बस्तर आरण्यक

प्रो० रामकुमार बेहार
श्रीमती निर्मला बेहार

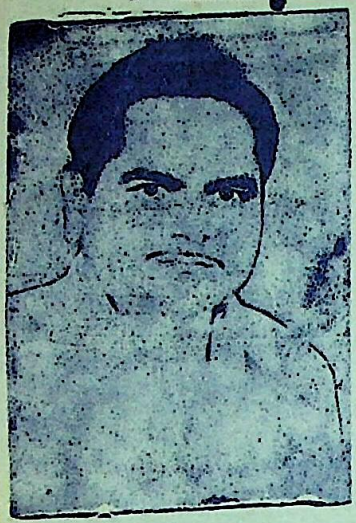

रामकुमार बेहार

जन्म स्थल — सारगढ़, जिला–रायगढ़

जन्म तिथि — १५-११-१९४६

शिक्षा — एम० ए० इतिहास

शोध — पी-एच० डी० उपाधि हेतु शोध प्रबंध प्रस्तुत कर दिया गया है।

विषय — बस्तर का आदिवासी-संघर्ष १८७६ से १९२१ ई०

प्रकाशन — विभिन्न दैनिक व साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित

पुस्तक — 'बस्तर आरण्यक' पहली प्रकाशित पुस्तक

सम्प्रति — शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जगदलपुर में व्याख्याता।

बस्तर आरण्यक

प्रो० रामकुमार बेहार
श्रीमती निर्मला बेहार

प्रथम संस्करण
१९८५

कीमत
सजिल्द — २० रु०
सामान्य — १५ रु०

बस्तर-आरण्यक
(इतिहास व संस्कृति)
कापी राइट प्रकाशक अधीन

प्रकाशक-
निर्मला बेहार
धरमपुरा, जगदलपुर

प्रमुख वितरक-
जोत स्टेशनरी स्टोर्स
जगदलपुर, बस्तर (म० प्र०)

मुद्रक-
जया प्रिंटिंग प्रेस
जगदलपुर

बस्तर आरण्यक

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ क से
	भूमिका—	
अध्याय १	— प्रागैतिहासिक व प्राचीन बस्तर	१
अध्याय २	— बस्तर में नागवंश का शासन	१०
अध्याय ३	— बस्तर में काकतीय शासन	२०
अध्याय ४	— मराठा पराश्रितता में काकतीय शासक	३७
अध्याय ५	— अंग्रेजी सर्वोच्चता में काकतीय शासक	४५
अध्याय ६	— सन् १८७६ ई० की अशांति	५६
अध्याय ७	— सन् १९१० ई० का विप्लव	६१
अध्याय ८	— रियासत बस्तर एक परिचय	७०
अध्याय ९	— रियासत बस्तर की प्रशासनिक व्यवस्था	७४
	— बस्तर के ऐतिहासिक स्थल	७६ बी०
अध्याय १०	— बस्तर का महापर्व दशहरा	७७
अध्याय ११	— मुर्गा लड़ाई बस्तर में	८५
अध्याय १२	— बस्तर का लमसेना	९०
अध्याय १३	— बस्तर में शिक्षा का इतिहास	९५
	— बस्तर इतिहास महत्वपूर्ण तिथियाँ	९५ बी०

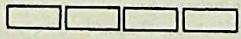

भूमिका

बस्तर के इतिहास व संस्कृति के कुछ पहलूओं को उजागर करने वाली यह पुस्तक आपके हाथों में है। बस्तर के सम्बंध में प्रामाणिक जानकारी का अभाव रहा है। बस्तर के सम्बध में जानने का कौतुहल लोगों में काफी है। इस स्थिति का फायदा उठाकर अनेक लेखकों ने बस्तर के बारे में अपनी कल्पना की उड़ान भरी और पुस्तक प्रस्तुत कर दी। कुछ ऐसे लेखक भी हैं जिन्होंने बस्तर को कभी देखा भी नहीं और बस्तर पर लिख डाला है।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् प्राथमिक़ता के आधार पर जो कार्य किए जाते हैं, उनमें से एक है— अपना इतिहास, अपने लोगों द्वारा लिखवाना और प्रकाशित करवाना। राष्ट्रीय स्तर पर यह कार्य हो रहा है, मगर राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने वालों का कार्य-क्षेत्र व्यापक रहता है ऐसी स्थिति में आंचलिक इतिहास प्रायः महत्व नहीं पाता। राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय विद्या भवन बम्बई द्वारा प्रकाशित इतिहास पुस्तकों की श्रृखंला में काकतीय शासक प्रतापरुद्र देव II के बारे में लिखा है कि तुगलकों से परास्त होने के पश्चात् प्रतापरुद्र देव गिरफ्तार कर लिए गए इसके पश्चात् उनका क्या हुआ इस पर गहन मौन व्याप्त है। आंचलिक इतिहासकारों को इसी शून्यता को भरना होता है जिसे राष्ट्रीय इतिहासकार छोड़कर आगे बढ़ चुके होते हैं। आंचलिक इतिहास, राष्ट्रीय इतिहास का पूरक होता है।

'बस्तर-आरण्यक' का लेखन इन्हीं विन्दुओं को ध्यान में रखकर क़िया गया है। परम्परा निर्वाह के लिए प्रागैतिहासिक, प्राचीन व मध्य-कालीन बस्तर का वर्णन इसमें किया गया हैं, मगर लेखक द्वय ने अपना पूरा ध्यान काकतीय-शासकों के इतिहास पर दिया है। बस्तर के इति-हास की सांगोपांग विवेचना इसमें प्रस्तुत की गई है। ऐसी स्थिति में सन् १८७६ ई० का, सशस्त्र प्रदर्शन कर आदिवासियों द्वारा अपनी बात प्रशासन से मनवा लेने का प्रकरण कैसे छूट सकता है। बस्तर बस्तर में रहने वाले वन-वासियों का है" इस युद्ध-घोष को लेकर प्रारंभ क़िया, १९१० ई० का विप्लव, इस पुस्तक के कुछ पृष्ठों में वर्णित है।

विप्लव का इतिहास लेखन अपेक्षाकृत एक जटिल कार्य होता है। अतिशय भावुकता कभी-क़भी सही बातों को परदे के पीछे ही रख छोड़ता है। निष्पक्ष विवेचन आवश्यक होता है। राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली में बस्तर सम्बंधी काफी सामग्री संग्रहित है। लेखक द्वय ने इन्हें तो आद्यांत पढ़ा हो है, बस्तर अंचल के बुजुर्गों से मिलकर जन-स्मृति को भी इतिहास लेखन का आधार बनाया है।

बस्तर के इतिहास के अलावा बस्तर से सम्बंधित कुछ और जानकारियाँ भी इसमें समाहित हैं। यहाँ के लाखों आदिवासियों की इष्ट-देवी दन्तेश्वरी माई के प्रति श्रद्धासुमन अर्पित करने का अवसर देने वाले महापर्व दशहरा का वर्णन किया गया है। बस्तर अंचल में मनोरंजन के प्रमुख साधनों में से एक 'मुर्गा लड़ाई' है। इस मुर्गा लड़ाई का शब्द-चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। बस्तर के आदिवासियों में विवाह की अनेक पद्धतियाँ हैं, उनमें से एक 'लमसेना पद्धति' है। 'अर्थ का अनर्थ' लमसेना पद्धति में सामने आता है। लमसेना के मनोभावों को व्यक्त कर लेखक द्वय इस पद्धति की समीक्षा के लिए जन–मानस को तैयार कर पाए तभी लेख की सार्थकता है। सन् १८८६ ई० में इस अंचल में पहला प्राथमिक विद्यालय खुला। प्राथमिक शिक्षा का सौंवा वर्ष चल रहा है। इस दौरान शिक्षा-जगत से जुड़ी सभी समस्याओं व पहलूओं पर इस लेख में विचार किया गया है।

'बस्तर-आरण्यक' का लेखन व प्रकाशन एक निजी प्रयास है। हजारों रुपए इसमें खर्च हुए हैं मगर लेखकों को इस बात का संतोष है कि जिस मिट्टी में उन्होंने अपने जीवन के डेढ़ दशाब्दी बिताए हैं, उस मिट्टी के ऋण से उऋण होने के लिए उन्होंने कुछ तो किया। बस्तर, बस्तर के आदिवासी, उनकी आस्थायें–संस्थायें विगत पन्द्रह वर्षों से लेखक दम्पत्ति के मन-मस्तिष्क में छाए रहे। अतिशय शोषण ही आदिवासी को अशांत करता है, उद्वेलित करता है यह मूल-मंत्र हम देना चाहते हैं। बस्तर का प्रामाणिक इतिहास वक्त की माँग है, समय का तकाजा है। यह एक अभियान है। इस अभियान का पहला पड़ाव 'बस्तर आरण्यक' है।

इस पुस्तक का प्रकाशन अधिकार किसी बड़े प्रकाशक को हमने नहीं बेचा। बड़ा प्रकाशक यानि की महंगी पुस्तक। केवल बड़ी लायब्रेरियों तक यह सीमित न रह जाय इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर पुस्तक प्रकाशन का जोखिम उठाया गया है।

पुस्तक के मुद्रक- जया प्रिंटिंग प्रेस के मालिक व सभी कर्मचारी धन्यवाद के पात्र हैं। जिन्होंने पूर्ण मनोयोग से पुस्तक तैयार की।

आज से ठीक पचहत्तर वर्ष पूर्व खड़गघाट पर १६ फरवरी १९१० ई० को अन्याय, अत्याचार, शोषण के विरुद्ध संघर्ष करते शहीद हुए पाँच अनाम विप्लवकारियों को हमारी श्रद्धाँजली।

जगदलपुर **रामकुमार बेहार**

१६ फरवरी १९८५ **निर्मला बेहार**

"पूज्य पिता श्री

राम खेलावन बेहार

को सादर समर्पित"

अध्याय—एक

प्रागैतिहासिक व प्राचीन बस्तर

प्रागैतिहासिक काल के बारे में जानकारी प्राप्त करना अत्यंत कठिन कार्य रहा है। बस्तर का सौभाग्य है कि यहां के बारे में वर्णन काफी पहले से प्राप्त होता है। सभ्यता का इतिहास पाषाण युग से प्रारंभ होता है। पहले-पहल मनुष्य की क्या स्थिति थी इसकी झलक इस युग के उपकरणों से मिलता है। विश्व इतिहास का प्रारंभ पाषाण युग से होता है। पाषाण युग वह युग है जब मनुष्य पशुओं की भांति जंगलों, पर्वतों नदी, घाटियों में विचरण करता था तथा कंद-मूल, फल या पशुओं का शिकार कर अपना पेट भरता था। मूलादि के खोदने तथा पशुओं का शिकार करने के लिए वह नदियों में तथा स्थानीय प्राप्त होने वाले वट्टीदार पत्थरों को तोड़कर उन्हें नुकीला बनाकर भद्दे औजार बनाता था। जिस युग में मनुष्य ने इस प्रकार के औजार बनाये उसे पाषाण युग कहा जाता है [डॉ० राजकुमार शर्मा– मध्यप्रदेश पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ पृ० १] तत्कालीन मानव अधिकांशतः नदियों या झीलों के किनारे या पर्वत की गुफाओं में रहता था अतः पुरातत्वविद पाषाण युगीन अवशेषों की खोज प्राचीन नदी, घाटियों में अथवा पर्वत कंदरा में करते हैं।

मध्य प्रदेश के इतिहास का प्रारंभ पाषाण युग से होता है। बस्तर अंचल के इतिहास का प्रारंभ भी इसी युग से होता है। बस्तर की जीवन दायिनी नदी इन्द्रावती के किनारे जगदलपुर तहसील के अंतर्गत आने वाले ग्राम- कालीपुर में पूर्व पाषाण कालीन उपकरण प्राप्त हुये हैं [मध्य प्रदेश संदेश, पुरातत्व विशेषांक जून १९७० पृ० १०] बस्तर में पाषाण युगीन जीवन के चिन्ह, उपकरण आदि इन्द्रावती और नारंगी नदी के किनारे प्राप्त हुये हैं। इन्द्रावती नदी के किनारे स्थित घाट लोहंगा, देउरगांव [जगदलपुर-चित्रकूट मार्ग पर स्थित], चिन्ता भाटवाड़ा, गढ़ चन्देला, चित्रकूट ऐसे स्थल हैं जहां से पाषाण कालीन

कुछ उपकरण प्राप्त हुये हैं नारंगी नदी के किनारे स्थित ग्राम राजपुर में भी इस युग के उपकरण प्राप्त हुये हैं [म० प्र० संदेश, जून १९७० पृ० १०] इन स्थलों से उपकरणों का प्राप्त होना स्पष्ट रुप से प्रमाणित करता है कि मानव विकास के प्रारंभिक काल से ही इस अंचल में मानव रहता आया है। वस्तर अंचल से प्राप्त यें उपकरण जहां थें, जैसे थे, वैसे ही उठा लिये गये हैं, पुरातत्विक उत्खनन इस अंचल में अभी नहीं हुआ है यदि उत्खनन की योजना वनाकर कार्य किया जाये तो और अधिक उपकरण व जानकारी मिलने की पर्याप्त संभावनायें हैं। नव पाषाण युग का एक स्थल तीरथगढ़ के पास रहा होगा, यहां की एक गुफा से अनेक उपकरण प्राप्त हुये हैं, इन उपकरणों में से सबसे अधिक आकर्षक एक परशु [परसा] है, पत्थर का वना यह परशु ४३ से० मी० लम्बा और साढ़े तीन कि० ग्रा० वजन का है। इसे यदि अधिकारिक मान्यता मिल जाती है तव नव पाषाण युग में भी वस्तर अंचल में मानव-निवास सिद्ध हो जावेगा।

वर्तमान मध्य प्रदेश के कतिपय स्थलों पर शिलाश्रय मिले हैं। प्रागैतिहासिक काल में मानव पत्थर के प्राकृतिक गुफाओं में रहता था। इन शैलाश्रयों की भीतरी छतों और दीवालों पर अनेक ढंग की रोचक चित्र रचना मिली है, ये शिलाश्रय व शैलचित्र किसी एक युग के नहीं हैं कुछ प्रागैतिहासिक परन्तु कुछ अन्य इतिहास काल से भी संव धत हैं, अधिकांश गुफा चित्रों में लाल, सफेद, काला, नीला या पीला रंग उपयोग में लाया जाता है, वहां निवास करने वाले लोगों की जीवन-चर्या तथा रुचि का पता इनसे चलता है, मुख्यतः जो दृश्य इन चित्रों में मिलते हैं वे हैं — विविध आयुधों से पशु-पक्षिओं का शिकार जानवरों की लड़ाई, मानवों के पारस्परिक युद्ध, पशुओं पर सवारी, गीत, नृत्य पूजन, मधु संचय, घरेलू जीवन संबंधी अनेक दृश्य [डॉ० राजकुमार शर्मा म० प्र० के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ पृ० ७]

मध्य प्रदेश के पुरातत्व संचालक श्री कल्याण कुमार चक्रवर्ती ने स्थानीय लोगों की सहायता से वस्तर के आलोर ग्राम के निकट की पहाड़ी परे शैलाश्रय और शैलचित्र खोज निकाले हैं, इनसे यह धारणा

समाप्त प्राय होती है कि वस्तर भारतीय इतिहास की मुख्य धारा से अलग थलग रहा है, ये चित्र लाल रंग के हैं और मृदा वर्णों से चित्र हैं; चट्टान के धरातल का क्षरण होने के कारण चित्रों की रुपरेखा की स्पष्टता कम हो गई है, मानव और पशु आकृतियों को आसानी से पहचाना जा सकता है [नवभारत रायपुर, दिनांक २४ जनवरी १९८४ अंक] इन शैलचित्रों की अधिकारिक पुष्टि यदि हो जाती है तो निश्चित रुप से वस्तर के प्रागैतिहासिक अस्तित्व की पुष्टि हो जावेगी।

रामायण कालीन दंडकारण्य क्षेत्र के अंतर्गत वस्तर आता था [म० प्र० पुरातत्व सं० ग्रन्थ पृ० १०] यह अंचल दंडकारण्य क्यों कहलाया इससे संबंधित एक कथा पुराणों व अन्य धर्मग्रंथों में मिलती है। उत्तर भारत के महाप्रतापी क्षत्रीय सम्राट इक्ष्वाकु प्रथम ने दक्षिण भारत वर्ष के भी कुछ भाग जीते, इसी सम्राट का एक पुत्र दंड था। जीते हुये भाग का शासन [विंध्य और शैवल के मध्य का] इसी दंड को सौंपा गया, एक वार शुक्राचार्य की अनुपस्थिति में उनके आश्रम में घुसकर राजा दंड ने उनकी कन्या अरजा के साथ वलात्कार किया था, जिससे कुपित होकर महर्षि शुक्राचार्य ने उदंड राजा दंड को ऐसा शाप दिया था कि उसका वह वैभवशाली दंडक जनपद भस्मीभूत होकर कालांतर में दंडकारण्य के रुप में परिणत हो गया, इस प्रकार राजा दंड के नाम पर ही इस विस्तृत और भयावह वन क्षेत्र का नाम दंडकारण्य पड़ गया [लाला जगदलपुरी, लेख, मध्य प्रदेश संदेश अप्रेल १९८३ ई० पृ० ५] डॉ० हीरालाल शुक्ल ने आधुनिक वस्तर और कोरापुट को ही प्राचीन दंडकारण्य का वास्तविक उपलक्षक माना है [लंका की खोज पृ० १२] किष्किन्धा का शासक वाली था, उसकी वानर-सेना दंडकारण्य में रहती थी, आज भी वस्तर में वालिपरक ग्रामो के नाम इस क्षेत्र की रामायण युगीन ऐतिहासिकता के साक्षी हैं। वालिगा, वालिपुर, वालिकोंटा, वालिपेट, वाली, वालींड ऐसे ग्राम हैं [लंका की खोज पृ० १९५]

दंडकारण्य का यह इलाका सदैव से घने वन से युक्त रहा है। दुर्लभ वृक्षों से युक्त, अलाध्य पहाड़ों से घिरा यह प्रदेश वन्य पशुओं से

भरा था, अतः कोई बाहरी शक्ति यहां हस्तक्षेप नहीं करती थी, स्थानीय शक्तियां ही शासन सूत्र संभालती थीं, यहां के निवासी भी स्वतंत्रता प्रेमी होने के कारण शासन की नाममात्र की आधीनता स्वीकार करते थे, क्षेत्र के राजा, सरदार न तो इन पर पूरी कड़ाई बरत सकते थे और न इन्हें पूरी तरह से स्वतंत्र छोड़ सकते थे, यह स्थिति सैकड़ों वर्षों तक रही।

भारत वर्ष में राजनैतिक एकता स्थापित करने का प्रयास करने वाला चन्द्रगुप्त मौर्य [३२४ ई० पू० से ३०० ई० पू०] भी इस अंचल को अपने अधिकार क्षेत्र में नहीं ला पाया था जबकि बस्तर का यह अंचल उसकी राजधानी पाटलीपुत्र अतिदूर नहीं था, पराक्रमी सम्राट अशोक महान [सन् २७३ ई० पूर्व से २३६ ई० पू०] अपने साम्राज्य-विस्तार के दौर में कलिंग [वतमान उड़ीसा प्रान्त] पर आक्रमण करता है यह आक्रमण २६१ ई० पू० में होता है, कलिंग का राज्य बस्तर अंचल से लगा हुआ था, इस अंचल के सरदारों ने अशोक महान के स्थान पर कलिंग नरेश का साथ देना बेहतर समझा, कारण स्पष्ट है कलिंग उनका पड़ोसी राज्य था, कलिंग युद्ध के विजेता अशोक महान ने इस पूरे अचल को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया उसका एक राजकुमार वर्तमान पुरी जिले में स्थित तोषालो को राजधानी बनाकर शासन-सूत्र संभालने लगा, इस प्रकार से इस अंचल के निकट राज-प्रतिनिधि रहने लगा मगर ऐसा प्रतीत होता है कि अचल पर उसकी पकड़ नाम मात्र की थी।

मौर्य साम्राज्य के कमजोर होने पर कलिंग प्रदेश में खारवेल नामक प्रसिद्ध राजा हुआ, उसने अपने साम्राज्य के अंतर्गत बस्तर अंचल को लाया, उसी के शासन काल में इस अंचल में जैन धर्म कुछ प्रचार-प्रसार पा सका, जैन-धर्म के कुछ प्रतीक चिन्ह इस अचल में प्राप्त हुये हैं।

पहली शताब्दी ई० पू० में सात वाहन राजवंश का शासन इस क्षेत्र में रहा, इसके पश्चात यह अचल महावन, महाकान्तार आदि नामों से संबोधित होता रहा, सन् २०२ से ३५० ई० तक की अवधि दक्षिण

इतिहास में अंधकारपूर्ण रही, दंडकारण्य पर अधिकार स्थापित करने के लिये इक्ष्वाकु भी प्रयत्नशील थे और वाकाटक भी, मगर दोनों को यहां की भौगोलिक स्थिति के कारण स्थायी सफलता नहीं मिल पायी। घने वन से युक्त, स्वतंत्रता प्रेमी निवासियों को अपनी आधीनता में रख पाना टेढ़ी खीर थी, स्थानीय शासक ही, यहीं रहकर इस अंचल को नियंत्रण में रख सकते थे ऐसा ही कोई स्थानीय शासक इस काल में इस अंचल में वंशानुगत शासन करता रहा।

गुप्त काल का महापराक्रमी सम्राट समुद्र गुप्त था, अपनी विजयों के कारण उसे 'भारतीय नेपोलियन' की उपाधि से सम्मानित किया जाता है, समुद्र गुप्त अपने विजय अभियान में जब निकला तब उसने पहले प्रसिद्ध राजाओं को ही ध्वस्त किया। महाकान्तार पर उसका आक्रमण और इलाहाबाद प्रशस्ति लेख में उत्कीर्ण किया जाना यह स्पष्ट रुप से प्रमाणित करता है कि महाकान्तार एक प्रसिद्ध राज्य था, राय बहादुर हीरालाल लिखते हैं — 'यह महाकान्तार कदाचित बस्तर का कोई भाग रहा होगा जहां पर इस समय भी भारी जंगल है" [मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ० १९] महाकान्तार का शासक व्याघ्रराज था, जंगल से युक्त प्रदेश के शासक का नाम भी व्याघ्र से निर्मित था, क्षेत्र के उपयुक्त नामकरण हुआ था, समुद्रगुप्त की सेना का इसने सामना किया, ३५० ई० में इसे समुद्रगुप्त ने परास्त किया पराजय के बावजूद व्याघ्रराज का राज्य समुद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया, कारण स्पष्ट है, समुद्रगुप्त नीति निपुर्ण था, उसे दक्षिण भारत जीतना था, दक्षिण भारत वर्ष का मार्ग महाकान्तार होकर जाता था, महाकान्तार के शासक को मित्रता के पाश में बांधे रखना आवश्यक था जिससे दक्षिण भारत अभियान में पीठ पर वार को आशंका न रहे, महाकान्तार के शासक से खाद्यान्न की पूर्ति होती रहे। पूरा अंचल व्याघ्र-राज को ही शासन के लिए सौंप दिया गया था। समुद्रगुप्त के पश्चातवर्ती किसी दूसरे शासक ने महाकान्तार विजय का प्रयास नहीं किया।

■ बस्तर के नलवंशी शासक ■

प्राचीन बस्तर में शासन करने वाली ज्ञात जाति नलों की रही है, भारतीय राजागण पुराणकालीन सुप्रसिद्ध राजाओं से अपना सबंध जोड़ने में गौरव अनुभव करते थे, किसी ने बड़े अभिमान के साथ अपने वंश का संबंध राजा नल से जोड़ा तो दूसरे ने पांडव कुल से अपना संबंध जोड़ने का प्रयास किया [डॉ०वा०वि० मिराशी – कलचुरी नरेश और उनका काल पृ० ३] बस्तर में भी जिस राजवंश ने अपना राज्य स्थापित किया उसने अपने को पुराण कालीन नल का संबंधी बतलाया, प्राप्त शिलालेखों स्वर्ण मुद्राओं तथा ताम्र मुद्राओं से कुछ तथ्य प्रकाश में आये हैं। सर्वप्रथम नलवंशी शासको [के बस्तर पर शासन] का पता लगता है [प्यारेलाल गुप्त– प्राचीन छत्तीसगढ़ पृ० २२७] नलवंशी शासक बस्तर में कब आये ? किधर से आये और कब तक इनका शासन इस अंचल में रहा यह विवादास्पद रहा है, कुछ ने नलों का मूल स्थान तुंगभद्रा नदी के किनारे बताया है तो कुछ ने उन्हें बस्तर अचल का ही बतलाया है डॉ० हीरालाल शुक्ल ने उन्हें महाकान्तार का ही मूल निवासी माना है [प्राचीन बस्तर, पृ० ४५] दंडकारण्य अचल और छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले में नलवंशी शासकों के सिक्के व शिलालेख मिले हैं अतः इतना निष्कर्ष तो सहज लगाया जा सकता है कि नलों को प्रसिद्धि इसी अंचल में प्राप्त हुयी, नलवंशी नरेश भवदत्तवर्मन ने प्राचीन बस्तर अंचल में राज्य करते हुये वाकाटक राजाओं की राजधानी नंदिवर्धन सहित काफी बड़ा भाग जीत लिया था [मध्य प्रदेश के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ पृ० ३८-९] यह विजय कब मिली निश्चित रुप मे ज्ञात नहीं होता, लेकिन यह निश्चित है कि विजय की तिथि ४७० ई० से पूर्व की थी।

नलवंश के प्राप्त चार शिलालेखों में से एक महाराष्ट्र के ऋद्धिपुर में दूसरा उड़ीसा के पोड़ागढ़ में [एपिग्राफिया इंडिका भाग २१ पृ० १५३-५८] तीसरा उड़ीसा स्थित केसरिबेढ़ा में तथा चौथा राजिम से प्राप्त हुआ है, नलवंशी नरेशों के सिक्कों की एक निधि बस्तर जिले में स्थित एडेंगा में प्राप्त हुयी है. लेखों से ज्ञात होता है कि इस वंश क

सर्वाधिक प्रतापी राजा भवदत्त वर्मा हुआ, उसने वाकाटकों को पराजित कर वस्तर अंचल को गौरवान्वित किया। एडेंगा में प्राप्त ३२ सिक्के नलवंशी शासकों के हैं। वराहराज, भवदत्त और अर्थपति नामक नल-राजाओं के ये सिक्के हैं, इन सिक्कों को नागपुर स्थित संग्रहालय में संरक्षित रखा गया,है [जरनल आफ द न्युमेस्टिक सोसायटी आफ इंडिया वाराणसी भाग १ पृ० २९]

भवदत्त वर्मा के पश्चात स्कन्द वर्मा तथा अर्थपति भट्टारक हुये परन्तु भवदत्त वर्मा के साथ इनका क्या संबंध था इसके वारे में ज्ञात नहीं हो पाया है, इन अभिलेखों में स्कन्द वर्मा को महान शक्तिशाली बतलाया गया है, क्योंकि उसने न केवल अपने राज्य को वनाये रखा वरन शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। एक वार राज्य खोकर पुनः प्राप्त करना एक कठिन कार्य होता है, स्कन्ध वर्मा ने खोये राज्य को पुनः प्राप्त किया और प्रसिद्धि पायी। वराह भवदत्त और स्कन्द वर्मा वस्तर अंचल में पांचवी शताब्दी में शासन करते रहे। आठवीं शताब्दी में पृथ्वी राजा, विरुप राजा तथा विलासतुंग का शासन रहा, इन तीनों का उल्लेख राजिम के शिलालेखों में मिलता है। ३१ दिसम्वर १९७७ ई० को ग्राम कुलिया जिला दुर्ग में प्राप्त ३० स्वर्ण सिक्कों से वस्तर इतिहास के अज्ञात काल पर कुछ प्रकाश पड़ता है। पांचवी शताब्दी के पश्चात कौन शासक रहे यह ज्ञात नहीं हो पाया था। इन सिक्कों के आधार पर प्रो० एल० एस० निगम ने संभावना व्यक्त किया है, कि पृथ्वीराजा से पूर्व स्तम्भा और उससे पूर्व नंदनराजा नलवंशी शासक रहे। कुलिया में प्राप्त स्वर्ण सिक्को में दो सिक्के नंदनराजा और स्तम्भा नामक अज्ञात शासकों के हैं। महेन्द्रादित्य, भवदत्त और अर्थपति के सिक्कों के साथ इन दो शासकों के सिक्कों के मिलने से निश्चित रुप से कहा जा सकता है कि ये शासक नलवंशी रहे होंगे। पांचवी शताब्दी और आठवीं शताब्दी के ज्ञात नल शासकों के वीच के काल का शासक इन्हें माना जा सकता है, निश्चित रुप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि ठोस प्रमाण अभी तक प्राप्त नहीं हुये हैं। [एल० एस० निगम–हिदरटू अननोन रिपावसे गोल्ड कायन्स ऑफ नंदनराजा एंड स्तम्भा, प्राच्य प्रतिभा ग्रंथ ५ क्र० १ पृ० ७४] इतना तो निश्चित रुप से कहा जा सकता

है कि पांचवी शताब्दी से आठवी शताब्दी तक नलवंश के शासक रहे, नलवंशी नरेश बस्तर तथा दक्षिण कोसल के भू-भाग पर काफी समय तक राज्य करते रहे, [मध्यप्रदेश के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ पृ०४७]

पुलकेशिन प्रथम का पुत्र कीर्तिवर्मन प्रथम था, उसका शासनकाल सन् ५६६ ई० से ५९८ ई० तक रहा। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध शासकों में उसकी गणना होती है, उसने युद्धों के द्वारा अपने साम्राज्य का विस्तार किया। उल्लेख मिलता है कि "उसने वनवासी के कंदव, कोकण के मौर्य व नलों पर जो संभवतः वस्तर और जयपुर के बड़े भाग पर शासन करते थे, विजय प्राप्त की [के० ए० नीलकंठ शास्त्री— ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया, पृ० १४३] कीर्तिवर्मन प्रथम ने जब वस्तर जीता, तब यहां नलवंश के शासक रहे होंगे, श्री शास्त्री का यह मत काफी सही प्रतीत होता है, पुलकेशिन द्वितीय के शिलालेख में भी नल नरेशों का उल्लेख आया है, इस शिलालेख में उत्कीर्ण है कि नलवंशी पूर्वी चालुक्य नरेशों के शत्रु थे आये दिन उनमें आपस में संघर्ष होता रहता था। पीठापुरम के एक अभिलेख में कहा गया है कि पूर्वी चालुक्य विजयादित्य ने चक्रकूट पर आक्रमण कर उसे जला डाला [मध्यप्रदेश के पुरातत्व का संदर्भ ग्रन्थ, पृ० ५६] ऐसा प्रतीत होता हैं कि नलवंशी शासकों के कमजोर होने पर वस्तर अंचल के तत्कालीन सीमावर्ती शासकों ने उसे आत्मसात करने का प्रयास किया, अनेक आक्रमण हुये और विनाश ही अधिक हुआ। ऐसा ही एक आक्रमण वेंगी के राजा का भी वस्तर पर हुआ, उसका कवि विल्हण अपने काव्य ग्रंथ 'विक्रमांक देव चरितम' में वस्तर का उल्लेख कई बार करता है, एक स्थल पर वह लिखता है—'विक्रमादित्य ने चक्रकोट [वस्तर] के दुर्ग पर चढ़ाई की और उसे अपने अधीन कर लिया, केवल उन हाथियों को छोड़कर जो राजमहल की दीवालों पर चित्रित थे [प्राचीन छत्तीसगढ़, पृ० २२८]

नलवंशी शासकों की राजधानी पुष्करी का उल्लेख मिलता है यह कौन सा स्थल था अभी निर्धारित नहीं हो पाया है, डॉ० हीरालाल शुक्ला ने अपना मत व्यक्त किया है कि उड़ीसा प्रांत के कारापुट जिले में स्थित पोड़ागढ़ ही प्राचीन काल में पुष्करी नाम से जाना जाता था, [प्राचीन वस्तर, पृ० ४५] नल शासकों के कुछ शिलालेख पोड़ागढ़ में

प्राप्त हुये हैं संभवतः इसी आधार पर डॉ० शुक्ला ने अपना मत व्यक्त किया है जब तक पुष्करी के बारे में अधिकृत तौर पर जानकारी नहीं मिल जाती निश्चित रुप से कुछ भी कहना उचित नहीं प्रतीत होता है।

प्राचीन बस्तर में शासन कर रहे नलवंशी शासक समय के साथ कमजोर होते गये, चाहे विजेता हो चाहे प्रजेता युद्ध से नुकसान दोनों पक्ष को होता ही है। नलवंशी शासक जब शक्तिशाली थे तब वे आक्रमण किया करते थे, जब वे निर्बल हुये तब उन पर आक्रमण होने लगे, इन आक्रमणों से नलों की शक्ति और क्षीण होती गयी।

नलवंशी राजा भवदत्त ने 'महाराज' की उपाधि धारण की थी इससे पता चलता है कि वह किसी का करद राजा नहीं था, स्वयं संपूर्ण शक्ति युक्त था। अभिलेखों में भवदत्त वर्मा के दो उत्तराधिकारियों का नाम मिलता है— ये हैं अर्थपति भट्टारक और स्कन्दवर्मा। भट्टारक शब्द या उपाधि ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी के लिये प्रयुक्त होता प्रतीत होता है। भवदत्त का पुत्र स्कन्दवर्मा था यह पोड़ागढ़ से प्राप्त शिला-लेख से ज्ञात होता है [एपिग्राफिया इंडिका भाग २१] डॉ० हीरा-लाल शुक्ला ने इसे माना है। नल राजाओं द्वारा सोने के सिक्कों का जारी करना प्रमाणित करता है कि ये शासक समृद्ध थे। नल राजाओं का बोलवाला आठवीं शताब्दी तक हो रहा, इसके पश्चात भी नलराजा रहे हों मगर वे प्रभावशाली नहीं थे यह ऐतिहासिक तथ्य है।

'नलवंश और नागवंश के बीच का काल एसा प्रतीत होता है कि केवल संघर्ष में व्यतीत हो गया चढ़ाइयां होती रही और निर्माण के स्थान पर विनाश ही अधिक हुआ' [प्राचीन छत्तीसगढ़ पृ० २२८-९] बस्तर अंचल में उड़ीसा के गंगवंशी शासकों का भी शासन रहा। लाला जगदलपुरी के अनुसार - "८५० ई० के पश्चात जगन्नाथपुरी से आये गंगों के अस्तित्व पर धुंधला सा प्रकाश पड़ता है। जगन्नाथपुरी से आकर गंग राजवंशी सदस्यों ने अपने पूर्वज किसी 'बाल सूर्य' के नाम पर एक नगर बसाया जो कालांतर में बारसूर गढ़ के नाम से प्रसिद्ध हो गया था [मध्यप्रदेश संदेश, अप्रेल १९८३ पृ० ६] ठाकुर केदारनाथ ने बस्तर भूषण में लिखा है – "लोग कहते हैं कि जगन्नाथपुरी के

राजा गंगवंशी थे उनके ६ औरस पुत्र हुये, एक रखनी से था किसी कारण से राजा ने इन ६ पुत्रों कों राज्य न देकर दासी पुत्र को राज्य दिया। इसी से ६ औरस पुत्र इधर-उधर चले गये। उनमें से एक बस्तर में आकर राज्य करने लगे [बस्तर भूषण, पृ० १३१]

गंगवशी राजाओं ने बारसूर में अनेक मंदिर बनवाये। बारसूर मंदिरों का गढ़ बन गया। इन मंदिरों के भग्नावशेष आज भी अतीत की गाथा कहते हैं। ऐसा ही प्रसिद्ध मंदिर मामा-भांजा का मंदिर है। गंग राजाओं के बारे में इतिहास मौन है उसे मुखर होना चाहिये। ऐसा प्रतीत होता है कि गंग राजा बस्तर में बारसूर के आसपास ही सीमित रहे। बस्तर अंचल के बड़े भाग पर उनका अधिकार नहीं था, वे थोड़े समय तक थोड़े क्षेत्र पर शासन करने वाले थे।

अध्याय—दो

— बस्तर में नागवंश का शासन —

भारतीय इतिहास में नाग अनेक दृष्टियों से मनमोहक व चर्चित रहे हैं। भारतीय इतिहास और संस्कृति का कोई ऐसा अध्येता, विद्यार्थी न होगा जिसने नागों के संबंध में कुछ न सुना होगा किन्तु नाग जितने मोहक हैं उनका इतिहास उतना ही कठिन रहा है। [रोहिणी झा, नवसाहसांक चरित का सांस्कृतिक अनुशीलन, अप्रकाशित शोध प्रबध] नागवंश के छिदक नागों के कई शिलालेख वर्तमान बस्तर भू-भाग पर प्राप्त हुये हैं। इन नागों का उल्लेख चक्रकोट्टा, (चक्रकुट, चक्रकोट आदि) के राजा के रुप में हुआ हैं। मध्यकालीन भारत में वर्तमान बस्तर का भू-भाग इसी नाम से जाना जाता था। अंचल का नामकरण चक्रकोट्टा-भ्रमरकोट क्यों पड़ा इसके संबंध में स्पष्ट कारण ज्ञात नहीं है। अनुमान लगाया जाता है कि 'बस्तर राज्य की सरहद पर भामरागढ़ नाम का एक प्रसिद्ध और परम रमणीक स्थान है जहां तीन विशाल नदियों ने मिलकर बीच में एक चक्राकार अथवा जलभ्रमर के आकार का एक सुहावना द्वीप बना दिया है। कदाचित उस त्रिवेणी संगम और उसी चक्राकार तथा भ्रमराकार द्वीप के कारण ही इस इलाके का नाम चक्रकूट तथा भ्रमरकूट पड़ गया है" [डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र-

छत्तीसगढ़ परिचय, पृ० ११०-१११]

छिंदक नाग राजा जगदलपुर से लगभग ९० कि० मी० दूर स्थित बारसूर को राजधानी बनाकर इस क्षेत्र में शासन करते थे। ये कश्यप गोत्र के थे, इनका ध्वज सर्प चिन्ह युक्त था तथा राजचिन्ह वाघ व वाघ-शावक था। ये नागवंशी शासक अनेक उपाधि धारण किये हुये थे इन्हीं उपाधियों में से एक उपाधि थी— 'सर्वोत्तम शहर भोगवती के स्वामी' यह भोगवती पौराणिक नगर है। यह कौन सा स्थान है इसका निर्धारण एक जटिल प्रश्न है। अनेक अटकल लगाये जाते हैं, श्री रोहणी झा ने लिखा है "साहित्यिक तथा अभिलेखीय प्रमाणों के आधार पर आधुनिक बस्तर के भोग्राम [दन्तेवाड़ा] को प्राचीन भोगवतीपुर का लक्षक माना जा सकता है" [नवसाहसांक चरित का सांस्कृतिक अनुशीलन— पृ० १७५] इसकी पुष्टि अभी होनी है। सर्वोत्तम नगर भोगवती था, अतः उसके कुछ अवशेष जब तक प्राप्त नहीं होते तब तक किसी स्थान को उसका लक्षक मानने में गहरी आपत्ति होती है।

नागवंशी शासन का प्रारंभ चक्रकोट में ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य से हुआ। नागवंशी शासकों के शिलालेख शक. संवत् ९४५ (सन् १०२३) से मिले हैं। चक्रकोट में ये नागवंशी किस दिशा से आये इस पर थोड़ा सा मतभेद है कुछ विद्वानों ने तो नागों को बस्तर का ही मूल निवासी दर्शाया है वे उन्हें बाहर से आया हुआ नहीं मानते मगर यह पूर्वाग्रह है। अपने अंचल के महत्व को अनावश्यक रुप से बढ़ाने का प्रयास है नाम सादृश्य या प्राकृतिक वातावरण के सादृश्य को आधार मानकर हम कुछ भी स्थापित करने का हास्यास्पद प्रयास करके भले ही थोड़ी वाह-वाही प्राप्त कर ले हमारी स्थापित मान्यता को जब तक विद्वत मडली मान्य नहीं करती तब तक हमारी स्थापित मान्यता कोई खास मायने नहीं रखती। हम चाहे रामायण कालीन लंका को बस्तर में मान लें, रामायण कालीन चित्रकूट को यही मान लें, नलों का मूल स्थान, नागों का मूल स्थान यही मान लें और अपनी ढपली अपना राग सुनाते रहें जब तक अधिकारिक मान्यता नहीं मिलती तब तक सब वृथा है, पानी की लकीर है। 'लोक मान्यता' प्राचीन इतिहास को सम्मुख लाने वाला महत्वपूर्ण उपादान होता है बस्तर से बाहर रहने वालों की बात

तो हम छोड़ ही दें, बस्तर में रहने वाले लोग ही जगदलपुर से ३९ कि० मी० दूर स्थित जल प्रपात के लिये प्रसिद्ध चित्रकोट को रामायण युगीन प्रसिद्धि प्राप्त स्थल नहीं मानते। यही हाल लंका का बस्तर के आसपास स्थापित करने वालों के संबंध में लागू होती है।

सन् १०२३ के एर्राकोट के खंडित तेलगू शिलालेख से ज्ञात होता है कि चोल राजा राजेन्द्र प्रथम की सेना के साथ छिंदक परिवार पहले पहल चक्रकोट में प्रविष्ट हुआ [प्यारेलाल गुप्त — प्राचीन छत्तीसगढ़ पृ० २२९] प्रसिद्ध विद्वान रायबहादुर हीरालाल नागों का बस्तर आगमन दक्षिण भारत से मानते हैं [मध्य प्रदेश का इतिहास पृ० ६९] श्री डी० सी० सिरकार ने भी यही निष्कर्ष निकाला है कि छिंदक नाग कन्नड़ प्रदेश से अपना मूल स्थान छोड़कर ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में चक्रकोट आये [द स्ट्रगल फार अम्पायर पृ० २१५] ये नागवंशी दक्षिण भारत से बस्तर आये इसका एक सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि बस्तर में प्राप्त इनके अधिकांश शिलालेख दक्षिण भारतीय भाषा तेलगू में है।

कन्नड़ प्रदेश में आठवीं शताब्दी से रहे हैं सिंद वंशी नागों की ही उपशाखा चक्रकोट के छिंदक नाग थ। सिंध नदी और भगवान शिव की संतान होने के कारण ये सिंद कहलाये। सर्पों के राजा ने बाघिन का दूध पिलाकर इस वंश के मूल पुरुष को पाला पोसा। नागवंशी शासकों ने इसीलिये अपना ध्वज सर्प आकृति से युक्त बनाया और राज चिन्ह बाघ और बाघ-शावक को बनाया। यह नागवंशी शासकों का कृतज्ञता ज्ञापित करने का अपना तरीका था।

प्रथम नागवंशी शासक नृपतिभूषण

चक्रकोट में नागवंशी शासकों के अनेक शिलालेख प्राप्त हुये हैं। इन शिलालेखों में सबसे पुराना एर्राकोट स्थल से प्राप्त सन् १०२३ ई० का खंडित तेलगु शिलालेख है। इससे विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि चक्रकोट में नागवंशी शासन का प्रारंभ सन् १०२३ ई० में हुआ। इस शासन को समाप्ति कब हुयी यह जटिल प्रश्न है। सन् १३२४ ई० के टेमरा सती शिलालेख में राजा हरिश्चन्द्र का उल्लेख मिलता है। इसके आधार पर कुछ लेखकों ने नागवंश के शासन की

समाप्ति सन् १३२४ ई० में माना है। शिलालेख न मिलना आधार नहीं है। विशेष अवसरों पर ही शिलालेख खुदवाये जाते हैं। १३२४ ई० के पश्चात् भी नागवंशी शासन रहा।

'राजा साहिब वस्तर के वंशावली' की नकल में स्पष्ट लिखा है। "ते राजा [प्रतापरुद्र] के भाई अन्नमदेव महाराज ओरंगल त्यागि बस्तर में आये [ते राजा के महारानी सोन कुंवर चंदेलिन] संवत् १३७७ के साल में मिति वैसाख सुदि ८ के रोज बुधवार के गद्दी बैठे। उमर बत्तीस बरस ने उर ते राज किता बीस बरस। ४५ बरस राज गद्दी भोग किये। तिनके वंश के पुत्र भये श्री हमिरदेव महाराज जे संवत १४१५ के साल चंत्र वदी ३ सुक्रवार के रोज गद्दी बैठे"

उपरोक्त वर्णन में अन्नमदेव के सिंहासनारोहण की तिथि संवत १३७७ के साल में बताया गया है। ४५ वर्ष उनका राज्य करना बतलाया गया है इस प्रकार से उनके पुत्र हमिर देव का सिंहासनारोहण १३७७+४५=१४२२ संवत होना चाहिये। राजा प्रवीर चन्द्र भंजदेव ने अन्नमदेव का सिंहासनारोहण संवत १३७० लिखा है [लोहंडीगुड़ा तरंगिनी. पृ० १९] यही तिथि सही है।

वशावली की नकल में स्पष्ट लिखा है कि अन्नमदेव ने "उर ते [वहां=वारंगल में] राज किता बीस बरस" इस प्रकार सिंहासनारोहण संवत १३७० में २० वर्ष जोड़ने पर संवत १३९० [=A. D. १३३३] की तिथि आती है। वंशावली की नकल के आधार पर कहा जा सकता है कि सन् १३३३ ई० में चक्रकोट में अन्नमदेव का शासन प्रारंभ हुआ। अन्नमदेव ने नागवंशी नरेश को परास्त कर अपना राजवंश स्थापित किया था। इस प्रकार से सन् १३३३ ई० तक नागवंशी शासकों के शासन का क्रम चलता रहा। इस प्रकार सन् १०२३ ई० से सन् १३३३ ई० तक नागवशी शासकों का चक्रकोट में शासन ३११ वर्षों तक चलता रहा। यह काल अनेक उतार-चढ़ाव का रहा।

चक्रकोट के नागवंशी शासकों की श्रृखंला में पहला शासक नृपति-भूषण था एर्राकोट [जगदलपुर से लगभग १६ कि० मी० दूर स्थित] के खंडित तेलगू शिलालेख [रायबहादुर हीरालाल इन्सक्रप्सन इन सी०पी०

एन्ड बरार क्रमांक २८५] जो कि अपूर्ण है उसमें एक नागवंशी राजा का उल्लेख है शिलालेख का कुछ भाग अप्राप्त होने के कारण राजा के नाम का कुछ भाग प्राप्त नहीं है 'त्रिभूषण' शेष है पहले का शब्द या अक्षर खंडित हो गया है यह शब्द या अक्षर 'नृ' या 'क्षि' हो सकता है। इन्हें जोड़ने से राजा का नाम नृपति-भूषण या क्षिति-भूषण बनता है [डी० सी० सिरकार— द स्ट्रगल फार अम्पॉयर पृ० २१५] बस्तर में नागवंशी शासकों का केन्द्र बारसूर रहा इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि पूर्ववर्ती गंगवंशी राजा से बारसूर पर अधिकार स्थापित करने के लिये नृपति-भूषण का संघर्ष हुआ होगा जिसमें नृपति-भूषण विजयी रहा। बारसूर पर अधिकार और चक्रकोट में नागवंशी शासक को स्थापना का श्रेय इसी राजा को प्राप्त होता है। नृपति-भूषण के कार्यों का उसकी उपलब्धियों का विस्तार से वर्णन नहीं मिलता। उसके काल के अन्य शिलालेख अभी तक प्राप्त नहीं हुये हैं। सन् १०२३ ई० के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि छिंदक नागवंशी बस्तर में चोल राजा राजेन्द्र प्रथम की सेना के साथ बस्तर पर आक्रमण किये और बाद में यहीं बस गये। चोल राजा राजेन्द्र प्रथम का शासन काल सन् १०१२ ई० से १०४४ ई० तक रहा। उसके तिरुमलाई शिलालेख से ज्ञात होता [सन १०२४ ई० में उत्कीर्ण] कि उसने सक्रकोट्टम को जीता विद्वानों ने सक्रकोट्टम को बस्तर में बताया है। [द स्ट्रगल फार अम्पायर पृ० २३७] बस्तर के भाग को जीत कर राजेन्द्र चोल ने नागवंशी नृपतिभूषण को सौंपदिया, यही नृपति- भूषण चक्रकोट का प्रथम नागवंशी राजा हुआ।

बस्तर के नागवंशी शासकों के व्यक्तिगत नाम "धारावर्ष" 'कन्हर' राष्ट्र कूटों से लिये गये हैं। जबकि सोमेश्वर नाम तेलगू चोड़ वंश से लिये गये हैं। राष्ट्र कूट और चोड़ दोनों राजवंश चालक्यों के आधिपत्य को मानते थे [द स्ट्रगल फार अम्पायर, पृ० २१५] बस्तर के इन नागवंशी शासकों का चोड़ राजाओं से संपर्क और संबंध बाद में कम होता गया।

महाराजा धारावर्ष 'जगदेकभूषण'

चक्रकोट में नागवंशी शासकों की श्रृंखला में दूसरा नाम महाराजा धारावर्ष 'जगदेक भूषण' का आता है। यह ज्ञात नहीं हो पाया है कि प्रथम शासक नृपति-भूषण से इसका क्या संबंध था, पुत्र था या भाई था

बारसूर शिलालेख पर शक. संवत् ९८३ अंकित है। [हीरालाल- लिस्ट आफ इंस्क्रप्सन इन द सेंट्रल प्राव्हिन्सेस एंड बरार, दूसरा संस्करण नागपुर १९३२ पृ० १५८-९] यह शिलालेख तेलगु लिपि में है, इसमें उल्लेख किया गया है कि धारावर्ष के सामंत महामंडलेश्वर चन्द्रादित्य महाराज जो कि तेलगु चोड़ परिवार के थे और अम्माग्राम के स्वामी ने। एक शिव मंदिर बनवाया, एक तालाब खुदवाया बारसुरु में [वर्तमान बार-सूर] राजाधिराज से एक गांव खरीद कर चन्द्रादित्य ने मंदिर के खर्च के लिये दान किया इस अवसर पर महाराजा धारावर्ष भी उपस्थित थे यह उत्कीर्ण है। बारसूर के उपरोक्त शिलालेख से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि चन्द्रादित्य, धारावर्ष का सामंत था और वह अम्माग्राम को मुख्या-लय बनाकर राज्य करता था जबकि राजाधिराज धारावर्ष बारसूर को राजधानी बनाकर राज्य करते थे। सन् १०६० ई० के पश्चात् के शिला-लेखों में राजा धारावर्ष का नाम उल्लेख नहीं मिलता। इससे निष्कर्ष निकाला जाता है कि धारावर्ष के शासन काल की समाप्ति इस तिथि के पश्चात हो गयी।

—मधुरांतक देव—

धारावष का राजसिंहासन छिंदक नागवश के ही दूसरे व्यक्ति मधु-रांतक द्वारा छीन लिया गया। ५ अक्टूबर १०६' ई० से पूर्व की यह घटना है, मधुरांतक के राजपुरा प्लेट में यह तिथि उत्कीर्ण है [राय-बहादुर हीरालाल पूर्वोक्त, पृ० १६३-६४] १०६१ ई० का दंतेवाड़ा शिला-लेख जो कि अपूर्ण है किस शासक है नहीं कहा जा सकता। यह शिलालेख या तो धारावर्ष जगदेक-भूषण का का है या मधुरांतक का। धारावर्ष और मधरांतक दोनों नागवंशी थे यह स्पष्ट रुप से कहा जा सकता है। नाग-वशी शासकों की दो शाखायें वर्तमान बस्तर में ग्यारहवीं शताब्दी में राज्य कर रही थी। एक चक्रकोट में दूसरा भ्रमरकोट में प्रवीरचन्द्र भंजदेव ने लिखा हैं "जहां तक मैं समझता हूं भ्रमरकोट्या मंडल नारंगी नदी के दाहिनी हाथ पर होगा। शिलालेखों की सहायता से पता चलता है कि प्रायः दो भिन्न-भिन्न नागवंशी और सोमवंशी [काकतीय] राजघरानों ने दस सौ वर्षों तक भोग किये (लोहंडीगुडा तरंडिनी पृ ४)

नागवंशी शासक धारा वर्ष मधुरांतक के इस गृह युद्ध में राजा

मधुरांतक विजयी रहे, यह विजय दीर्घ जीवी नही रही मधुरांतक भ्रमर कोटया से संतुष्ट नहीं था उसने चक्रकोट के शासक को परास्त कर चक्र कोट व भ्रमरकोट दोनों का शासक बनने का श्रेय प्राप्त किया यह निश्चित रूप से उसके लिए गौरव पूर्ण था।

मधुरांतक का एक ताम्रपत्र ग्राम राजपुर से प्राप्त हुआ है राजपुर ग्राम भ्रमरकोटय मंडल के अन्तर्गत था। चक्रकोट विजय के पश्चात भी मधुरांतक राजपुर से जुड़ा रहा। इस ताम्रपत्र पर तिथि उत्कीर्ण है-शंक संवत ९८७ (१०६५ A D) ताम्रपत्र में भ्रमरकोटय - स्थित ग्राम राज पुर को दान में दिये जाने का उल्लेख है। [एपिग्राफिया इंडिका, भाग ९ पृ१७९] मधुरांतक का यह ताम्रपत्र उल्लेखनीय है इसमें वर्णन है कि राजा मधुरांतक ने मणिकेश्वरी मंदिर में नरबलि प्रथा नियमित रखने हेतु राजपुर राजधानी को अर्पित कर दिया। दुर्गा का एक रुप मणिकेश्-वरी भी है। नरबलि का अभिलेखीय प्रमाण वस्तर में इसी ताम्रपत्र से सामने आता हैं।

मधुरॉतक ने चक्रकोट के शासक को परास्त करने के लिए सोमावर्ती चोल शासक से सहायता प्राप्त की। पराजित शासक धारावर्ष के पुत्र सोमेश्वर प्रथम ने इसी उपाय का सहारा लिया, उसने सीमावर्ती कल्यान के शासक चालुक्यों की सहायता ली और मधुरांतक को परास्त कर अपने पिता के पराजय के लाछन को मिटाया, धारावर्ष की आत्मा अपने पुत्र की इस विजय से निश्चित रुप से शांति पायी होगी। सोमेश्वर प्रथम की यह विजय सन १०६५ ई० के बाद की है

—सोमेश्वर प्रथम—

चक्रकोट के महान शासकों में सोमेश्वर देव प्रथम की गणना होती है। महापराक्रमी सोमेश्वर ने पिता द्वारा खोये हुये राज्य को पुनः प्राप्त कर अपना गौरव तो बढ़ाया ही अपने कुल का भी गौरव बढ़ाया। उसकी विजय लिप्सा शांत नहीं हुयी। उसने अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाने का प्रयास किया। इस शासक के अनेक शिलालेख वस्तर में प्राप्त हुए है। पहला शिलालेख शक संवत ९९१ [१०६९ ई०] का है। यह कुरुसपाल में प्राप्त हुआ अंतिम शिलालेख भी कुरुसपाल में ही शक संवत १०१९ का प्राप्त हुआ। अतः उसका शासन काल तीस वर्षों कानिर्धारित किया जा सकता है [म० प्र० के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ पृ९६] कुरुसपाल जगद-लपुर से लगभग ३५ कि० मी० दूर स्थित है। राजा सोमेश्वर देव प्रथम

ने राजधानी बारसूर से भोगवती स्थानांतरित की। गार्डनर के अनुसार यह भोगवती स्थल नारायणपाल, कुरुसपाल, टेमरा और बोद्रा के समीप का कोई स्थल रहा होगा (समनोटस आन वस्तर हिस्ट्री - अप्रकाशित पृ४१)

सोमेश्वर प्रथम के बारे में जानकारी कुरुसपाल में प्राप्त अपूर्ण शिलालेख से मिलता है (एपिग्राफिया इंडिया भाग १०पृ०२५) गुप्तवंश के समुद्रगुप्त की उपलब्धियां इलाहाबाद प्रशस्ति स्तंभ में उत्कीर्ण है। चक्रकोट के इस पराक्रमी राजा की प्रशस्ति कुरुसपाल के शिलालेख में उत्कीर्ण है। इसमें वस्तर के नागवशी शासकों की बंशावली भी दी हुयी है। शिला लेख के अनुसार सोमेश्वर ने विंध्यवासिनी देवी की कृपा से चक्रकोट का साम्राज्य प्राप्त किया। इसने मधुराँतक देव की हत्या की। अपना पैतृक राज्य प्राप्त किया।

शिलालेख में सोमेश्वर के सैन्य अभियानों को रिकार्डकिया गया है। वेंगी के शासक ने मधुरांतक को सहायता पहुंचायी थी अत: वह सोमेश्वर का कोप भाजन हुआ। सोमेश्वर प्रथम ने वेंगी पर आक्रमण किया और उसे जला डाला भद्रपट्टन और वज्र को परास्त किया और दक्षिण कोशल के छ: लाख छियान्बे गांवों को छिना। छ: लाख छियानवे गांवों का छीना जाना सामान्य रुप से अतिशयोक्ति पूर्ण लगता है। प्यारेलाल गुप्त ने लिखा है-'यह सर्वथा अतिशयोक्ति है। इतने ग्राम तो सारे भारत वर्ष में रहे होंगे। लेकिन यह संभव है कि उसने कोशल पर चढ़ाई की होगी और उसका कुछ भाग जीत लिया होगा'[प्राचीन छत्तीसगढ पृ २३०]

पौराणिक मान्यता के अनुसार कोशल में दस लाख गांव थे [पद्म पुराण, कुमारिका खंड, अध्याय ३९] उस काल में ग्राम का अभिप्राय कुछ दूसरा था। इतना निश्चित है कि कोशल के एक बड़े भाग पर सोमेश्वर ने अपनी विजय पताका फहरायी। इस विजय को प्राप्त करने में उसे कलचुरियों से सहायता प्राप्त हुयी (द स्ट्रगल फार अम्पायर पृ २१७) विजयोपरांत सोमेश्वर ने तेलगु चोड़ यशोराज I को क्षेत्र का गवर्नर बनाया।

सोमेश्वर I अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। इसके लिये विजय यात्राओं का क्रम प्रारंभ किया। रतनपुर का शासक भी साम्राज्य विस्तार में लगा था। सोमेश्वर से उसकी लड़ाई अवश्यभावी थी। रतनपुर के जाजल्लदेव (सन १०९० से ११२० ई०') ने

सोमेश्वर पर आक्रमण किया और राजा, रानी, मंत्रीको बंदी बना लिया बाद में अपनी माता के कहने पर सबको मुक्त कर दिया। जाजल्लदेव और सोमेश्वर का यह युद्ध उल्लेखनीय है। साधन युक्त जाजल्लदेव ने सोमेश्वर को हारना तो था ही, मगर बिना लड़े सोमेश्वर ने आत्मसमर्पण नहीं किया। जाजल्लदेव विजयी होने केबावजूद सोमेश्वर से वार्षिक कर प्राप्त न कर सका। जाजल्लदेव को वार्षिक कर देने वाले राजाओं सामंतो की सूची में सोमेश्वर का नाम नहीं मिलता।

यह युद्ध कब हुआ ? इसकी स्पष्ट तिथि ज्ञात नहीं हो पायी है। सन १११४ ई० के रतनपुर शिलालेख में इसका उल्लेख है इससे तय है कि युद्ध इस तिथि तक हो चुका था। नारायणपुर शिलालेख सन् १११११ ई० का है, इसमें चक्रकोट का राजा कन्हर को बताया गया है। कन्हर सोमेश्वर। के पश्चात गद्दी पर बैठा था। सोमश्वर की मृत्यु सन् १११ या इससे पूर्व हुयी। जाजल्लदेव से युद्ध भी सन १११११ ई० से पूर्व सिद्ध होता है।

सोमेश्वर प्रथम के बाद के नाग शासक

सोमेश्वर प्रथम की मृत्यु सन १११११ ई० से पूर्व हुयी। उसके पश्चात उसका पुत्र कन्हर शासक हुआ। इसी के शासन काल में नारायण पाल (जगदलपुर से लगभग ३५ कि० मी० दूर में नारायण मंदिर का निर्माण हुआ। १११११ ई० में इसका निर्माण पूर्ण हुआ। इसके शिलालेख [एपि ग्राफिया इंडिका भाग ९पृ.३११] में चक्रकोट के नागवंशी शासकों की नामावली उत्कीर्ण है। नारायणपाल का मंदिर काफी हद तक बारसूर स्थित मांमा भांजा के मंदिर की अनुकृति प्रतीत होता है। दोनों की शैली एक है। शायद एक ही वंश के कारीगरों द्वारा निर्मित हो। यहां के शिलालेख में गुंडा महादेवी द्वारा भगवान नारायण को नारायणपुर नामक गांव दान में देने का उल्लेख है। यही नारायणपुर ग्राम कालांतर में नारायण पाल के नाम से संबंधित होने लगा।

कन्हर के पश्चात राजभूषण सोमेश्वर II का शासन चक्रकोट में रहा उसके पश्चात कन्हर II शासक हुए। कन्हर के पश्चात नरसिम्हा हुए नरसिम्हा 'महाराज' की उपाधि धारण करते थे। वे माणिक्यदेवी के परम भक्त थे। भैरमगढ़ के शिलालेख में इसका उल्लेख मिलता है (एपिग्राफिया इंडिका भाग १० पृ ४०] नर सिम्हा का काल १२१८ ई० के लगभग

माना जाता है इसी तिथि के जतनपाल–शिलालेख में उनका उल्लेख है [हीरालाल, इसकृप्सन इन द सी० पी० एंड वरार पृ० १६४] सोनारपाल के तिथि विहिन शिलालेख में राजा जयसिम्हा का नामोल्लेख है। जय–सिम्हा, नरसिम्हा के पश्चात राजा हुए।

चक्रकोट के अंतिम नागवंशी शासक हरिश्चन्द्र हुए। टेमरा सती शिलालेख [शक संवत १२४६] में इसका उल्लेख है। इस प्रकार से सन १०२३ ई० से प्रारंभ नागवंशी शासन सन १३३३ ई० में समाप्त होता है। पुराने स्थापित राजवंश के शासक से अपेक्षा रहती है कि वह आक्रमण कारी का वीरतापूर्वक सामना करेगा मगर चक्रकोट के नागवंशी शासक से यह अपेक्षा पूरी नहीं हुयी।

वारसूर में हरिश्चन्द्र, काकतीय अन्नमदेव से परास्त हुआ। मिट्टी के परकोटे से घिरे अपने महल में हरिश्चन्द्र नशे में धुत पड़ा था। अर्धरात्रि को अन्नमदेव अपने चुने सैनिकों के साथ, किले के परकोटे को फांद कर महल में प्रविष्ट हुआ और राजा हरिश्चन्द्र को कटार से मार डाला। यह घटना सन १३३३ ई० की है। लाल कालेन्द्र सिंह ने १९०८ ई० को सुप्रिन्टेन्डेट बस्तर को यह बयान दिया —'अन्नमदेव राजा जब वारंगल से आये तब वारसूर के नागवंशी राजा को परास्त किया और मातहती कबूल न करने के कारण मार डाला।" इस प्रकार से अन्नमदेव के हाथों राजा हरिश्चन्द्र का मारा जाना पुष्ट होता है।

चक्रकोट के नागवंशी शासकों का ३११ वर्षीय शासन काल महत्व पूर्ण रहा। इन शासकों के जो शिलालेख इन्द्रावती नदी के उत्तर में पाये गये, वे हिन्दी में हैं। दक्षिण में पाये गये शिलालेख तेलगू भाषा में है। इसका कारण बतलाते हुए राय बहादुर हीरालाल ने लिखा है कि इन्द्रावती जो बस्तर के बीचों बीच होकर बहती है, उस जमाने में नागरी और तिलंगी की सीमा थी।"[म० प्र० का इतिहास पृ० ७०]

नागवंशी नरेशों ने चक्रकोट को बाह्य आक्रमणों से बचाया। दक्षिण के चोल, चालुक्य, काकतीय, उड़ीसा के शासक तथा रतनपुर के कलचुरि शासकों की राज्य सीमा पर स्थित चक्रकोट प्रायः आक्रमणों का शिकार होता था। चक्रकोट पर आक्रमण करने वालों में प्रमुख थे- [१] चोल राजा राजेन्द्र प्रथम [२] मगध विहार के शासक रामपाल [सन १०७७ ई०से ११२० ई०] [३] मालवा के राजकुमार जगदेव।

नागवंशी शासन में राजपरिवार की महिलाएं भी भाग लेती थी। मासक देवी ऐसी ही महिला थी। दंतेवाड़ा शिलालेख में पांच महा सभा के मुखियों द्वारा नियम बनाए जाने का उल्लेख है। यह नागवंशी शासन में महासभाओं के महत्व को सूचित करता है। महासभा जो नियम बनाते थे, राजा उन्हें मान्य करता था। मध्यकालीन भारत में इस प्रकार की सभाओं का उल्लेख बहुत कम मिलता है। चक्रकोट का नागवंशी शासन जन प्रतिनिधियों को कितना महत्व देता था, यह इससे ज्ञात होता है।

चक्रकोट के नाग नरेश प्रजा के अधिकारों व स्वत्व का हरण नहीं करते थे। दंतेवाड़ा के शकसंवत ९८४(=१०६२ A.D) के शिलालेख में नाग राजा द्वारा एक किसान से बोरीग्राम खरीदने और उसे मंदिर को दान देने का वर्णन है [हीरालाल इंसक्रप्सन क्र० २८३] राजा ने किसान से ग्राम छीना नहीं वरन खरीदा।

नागवंशी राजाओं ने बड़ी बड़ी उपाधियां धारण की। "इन विरुदों में बहुत सी अत्युक्ति है तथापि इस प्रकार के अभिमान रखने वाले राजा किसी के मांडलिक बनकर नहीं रह सकते थे। इतनी बात तो स्पष्ट झलकती है। [हीरालाल म० प्र० का इतिहास पृ० ६८] नागवंशी नरेश कितने ही वीर क्यों न रहे हों मगर उनके श्रीपूर्ण होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। उनके बनवाये मंदिर, मकान इस कोटि के नहीं है। जिनसे उन्हें अतुलित संपत्ति'के स्वामी माना जा सके।

नागवंशी नरेशों के बारे में काफी कुछ सामग्री शिलालेखों के रुप में यत्र - तत्र, दबी-ढकी पड़ी हुयी हैं। जब तक बस्तर का पुरातात्विक सर्वेक्षण नहीं हो जाता, तब तक इतिहास की टूटी कड़ियां नहीं मिल पावेंगी, और बस्तर के नागवंशी शासकों के बारे में अधिकृत रुप से नहीं कहा जा सकता।

अध्याय तीन

बस्तर में काकतीय शासन

भारतीय इतिहास में मध्य युग का प्रारंभ सन १२०६ ई० से माना जाता है। बस्तर इतिहास का मध्य युग सन १३३३ ई० से प्रारभ माना जाना चाहिए। इसी तिथि को अन्नमदेव के हाथों नागवंशी राजा हरिश्चन्द्र पराजित होता है और बस्तर में समाजिक आर्थिक, राजनैतिक परिवर्तनों की प्रक्रिया प्रारंभ होती है।

अन्नमदेव ने विजय के पश्चात कोई शिलालेख नहीं खुदवाया, अतः निश्चित दिन माह का पता नहीं चल पाया है। इतिहासकारों का एक वर्ग वस्तर में नए राजवंश का प्रारंभ पन्द्रहवीं शताब्दी में मानता है। यह वर्ग फरिश्ता के हिस्ट्रीआफ डक्कन ग्रंथ एक के इस वर्णन से भ्रमित हुआ प्रतीत होता है -"विजय नगर के राय को सहायता देने के कारण वहमनी शासक ने उमर खां आजम के नेतृत्व में एक सेना वारंगल भेजी इस सेना ने सन १४२४ ई० में वारंगल के शासक को परास्त किया और मार डाला।" फरिश्ता ने वारंगल के तत्कालीन शासक का नाम नहीं दिया है, इसलिए लेखकों ने अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ाये और वांरगल के शासक की पराजय और हत्या को आधार वनाकर, वस्तर में नए शासन का प्रारंभ इसी तिथि को मान लिया। वस्तर के नए शासकों का वांरगल से संवन्ध रहा मगर इस संवन्ध को १४२४ ई० तक ले जाने की आवश्यकता नहीं है। उससे पहले हो वस्तर में नए वंश के शासन का प्रारंभ हो चुका था।

वांरगल के काकतीय राजा गनपति का कोई पुत्र नहीं था, उसने अपनी पुत्री रुदम्मा को वारिस वनाया। सन १२५७ ई० से १२९५ ई० तक वह शासन करती हैं। इस रुदम्मा का भी कोई पुत्र नहीं था, अतः उसने अपनी पुत्री के पुत्र प्रताप रुद्र को गोद लिया। दंतेवाड़ा शिलालेख में इसका वर्णन है [एपिग्राफिया इंडिका ग्रंथ ९ खंड ४ पृ १६४] प्रतापरुद्र काकतीयों की राजगद्दी पर बैठा अतः वह दत्तक नियमों के अनुसार काकतीय कहलाया। काकतीय वंश में सन ११५८ ई० से ११९५ ई० तक प्रताप रुद्र नामक शासक था। रुदम्भा के पश्चात गद्दी पर बैठने वाला यह राजा प्रताप रुद्र II के नाम से संवोधित किया गया।

अमीर खुसरो और जियाउद्दीन वरनी जैसे मुसलमान लेखकों ने उसे 'लदरदेव' नाम से उल्लेखित किया है। तुगलक वशी जूनाखां ने सन १:२३ ई० में वांरगल पर दूसरा आक्रमण किया। प्रतापरुद्र II ने ५ माह तक घेरे का वीरतापूर्वक सामना किया। तत्पश्चात विवश होकर आत्म समर्पण कर दिया। जियाउद्दीन वरनी ने लिखा है-- वांरगल नरेश लदरदेव को शहजादे [जूना खां] ने धन, हाथी और उसके रिश्तेदारों के साथ सुलतान के पास [दिल्ली] भेजा।" [तारीख -ए- फिरोज-शाही भारत का इतिहास भाग III, इलियट व डाउसन द्वारा संपादित

पृ१६६] शाहज़ादा जूनाखां ने यद्यपि कड़े पहरे में प्रतापरुद्र II को दिल्ली की ओर भेजा मगर उसके दिल्ली पहुंचने का वर्णन नहीं मिलता। इतिहासकार के० एस० नीलकंठ शास्त्री ने लिखा है - ऐसा लगता है मार्ग में उसने [प्रतापरुद्र II ने] अपने जीवन का अंत कर लिया।" [ए हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया पृ० २२४] लगातार आत्म समर्पण से खिन्न होकर भविष्य में और अपमान से वचने के निमित्त प्रतापरुद्र II का आत्म हत्या करना स्वाभाविक था। कब उसने आत्म हत्या की यह ज्ञात नहीं है।

प्रतापरुद्र II की मृत्यु के पश्चात उसका छोटा भाई अन्नमदेव वारंगल के काकतीय सिहासन पर बैठा। चूकि अन्नमदेव काकतीय राज गद्दी पर बैठा अतः वह काकतीय नियमों के अनुसार 'काकतीय' कहलाया। हमें ज्ञात है कि प्रतापरुद्र II काकतीय न होते हुए भी, काकतीयों की गद्दी पर बैठने के पश्चात 'काकतीय' कहलाया। जो भी काकतीयों की गद्दी पर बैठता वह काकतीय कहलाता था। इस सिद्धांत के अनुसार अन्नमदेव चालुक्य वंशी होते हुए भी काकतीय कहलाया। गोद लेने पर ही काकतीय कहलायेगा, ऐसा नियम नहीं था। गद्दी पर बैठकर काकतीय वंश परम्परा को आगे बढ़ाने वाला काकतीय कहलाता था। इतिहासकार के० ए० नीलकंठ शास्त्री ने ऐसा ही निष्कर्ष निकाला है। उनसे असहमत होने का कोई कारण नहीं है। वस्तर के शासक प्रवीर चंद भंजदेव ने अपने को हमेशा 'काकतीय' लिखा है। अपने वंश के बारे में लिखने में राजा प्रवीर चन्द्र से भूल या गलती नहीं हो सकती। सभी तथ्यों पर गौर करने के पश्चात हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते है कि अन्नमदेव काकतीय थे। वस्तर में उनके द्वारा स्थापित राजवंश काकतीय राजवंश था।

वस्तर में काकतीय राजवंश के शासन का प्रारंभ सन १३३३ ई० में अर्थात चौदहवीं शताब्दी में हुआ। उसके प्रमाण में निम्न तथ्य प्रस्तुत हैं -

(१) डिप्टी कमीश्नर जूनागढ़ लेफ्टि कर्नल इलियट [जिनके प्रशासन क्षेत्र में वस्तर आता था] ने २७ मई १८५६ ई० को वस्तर के बारे में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में उन्होंने लिखा है -प्रताप रुद्र का उत्तराधिकारी उनका भाई अन्नम देव हुआ। दिल्ली सुलतान के भगाये जाने पर वह वारगल छोड़कर वस्तर में शरण लेता है। प्रतापरुद्र सन १३२३ ई० में परास्त हुए यह ऐतिहासिक तथ्य है।

(२) डिप्टी कमीश्नर सिरोंचा, सी० ग्लासफर्ड थे इनके प्रशासन क्षेत्र में

वस्तर १८६२ ई० में आता था। उन्होंने अपनी रिपोर्ट ३० सितम्बर १८६२ ई० को दी।

इस रिपोर्ट के पैरा १५७ में लिखा है — "प्रतापरुद्र का भाई अन्नम देव उसका उत्तराधिकारी हुआ। अनेक वर्षों तक राजसिंहासन पर बने रहने के पश्चात उस पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ। इस पर गृह देवी [दंतेश्वरी माई] अन्नमराज को दर्शन देती है और वारंगल को मुसलमानों के लिए छोड़ देने की सलाह देती है। देवी के माग दर्शन में अन्नमदेव दूसरे साम्राज्य की तलाश में निकले।

इस में भी प्रतापरुद्र के पश्चात अन्नम देव के शासन का वर्णन है। १३२३ ई० में प्रतापरुद्र का परास्त होना ऐतिहासिक तथ्य है अतः चौदहवीं शताब्दी में ही अन्नमदेव का वस्तर आगमन प्रमाणित होता है।

(३) वस्तर संवन्धी अपनी पुस्तक 'वस्तर भूषण' में पं० केदार नाथ ठाकुर ने लिखा है — "करीव ६०० वर्षों से यहां [वस्तर में] इनके [राजा रुद्र प्रताप देव के] पूर्वज लोग राज्य करते रहे हैं। (पृ० १२९) ध्यातव्य है कि वस्तर भूषण का प्रकाशन सन १९०८ ई० में हुआ था। सन १९०८ ई० में करीव ६०० वर्षों से लिखना १३०८ ई० के आस पास के वर्ष को सूचित करता है। चौदहवीं शताब्दी में काकतीय वंश के शासन का प्रारंभ केदारनाथ जी ने भी माना है।

(४) वस्तर राजाओं की वंशावली में वर्णन है — "ते राजा (प्रतापरुद्र) के भाई अन्नमदेव महाराज औरंगल त्यागि वस्तर में आये ते राजा संवत १३७७ के साल में मिति बैसाख सुदि ८ के रोज बुधवार के गद्दी बैठे। उमर वत्तीस ने उर ते [वारंगल में] राज किता बीस बरस ४५ राज्य गद्दी भोग किये।" उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अन्नमदेव ने वारंगल में बीस वर्ष तक राज्य किया।

अन्नमदेव का सिहासन रोहण वर्ष संवत १३७०, हम पिछले अध्याय मे मान चुके हैं। वारंगल में बीस वर्ष शासन अर्थात १३७०+२०=१३९० संवत (१३३३A.D.) तक शासन कर अन्नमदेव वस्तर आए।

(५) वस्तर के काकतीय शासक प्रवीर चन्द्र भंजदेव ने लोहंडीगुड़ा तरंडिनी नामक पुस्तक में वस्तर और उसके राज वंश का इतिहास प्रस्तुत कियाहै। इस पुस्तक मे उन्होंने अपने को पांडव वंशी बताया है और पाँण्डव युधिष्ठिर के समय से पूर्वजों का शासनकाल और सिंहासन रोहण तिथि

दर्शाया है। इसके अनुसार अन्नम देव १३७० संवत [=१३१३A D.] में सिहासनारुढ़ हुए। पुस्तक में तिथि, वार व संवत सहित काकतीय शासकों का वर्णन है। इसे चुनौती किसी ने नहीं दिया है।

(६) बस्तर में काकतीय वंश के शासन का प्रारंभ पन्द्रहवीं शताब्दी से मानने वालों के लिए 'वस्तर राजाओं की वंशावली' एक चुनौती है। इसके अनुसार १४२४ ई० के आसपास वस्तर में काकतीय शासकों की चौथी पीढ़ी शासन कर रही थी।

उपरोक्त तथ्यों से प्रमाणित होता है कि वस्तर में काकतीय वंश के शासन का प्रारंभ चौदहवीं शताब्दी में हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी में शासन का प्रारंभ दर्शाना ऐतिहासिक तथ्यों का हनन करना है।

चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ में काकतीय वंश के शासन का प्रारंभ हुआ नागवंशी शासनकाल में चक्रकोट के नाम से संबोधित होने वाला यह अंचल 'वस्तर नामकरण से संबोधित होने लगा। देवी दंतेश्वरी के वर पर नव विजित क्षेत्र का नामकरण वस्तर हुआअन्नमदेव ने अपना अधिक समय बांसतरी' अर्थात बांस वृक्षों के नीचे व्यतीत किया। बांसतरी शब्द से वस्तर' नामकरण को जोड़ना उचित नहीं है। यह मान्य तथ्य है यह अंचल चौदहवीं शताब्दी से वस्तर कहलाया। यदि पुराण काल में 'वत्सर' से नामकरण का संबन्ध होता तो बहुत पहले से यह अंचल इस नाम से संबोधित होता।

अन्नमदेव काकतीय वंश के संस्थापक थे। भूपाल पटनम की ओर से वे चक्रकोट में प्रविष्ट हुए। भूपाल [राजा] के कदम पड़े इसलिए यह यह स्थान भूपाल पटनम [वर्तमान नाम भोपाल पटनन] कहलाया। यह स्थान अन्नमदेव ने अपने वीर साथी को सौंपा, मुसलमान आक्रमणकारियों के संभावित आक्रमण के विरुद्ध एक मोर्चा बना [ग्लासफर्ड रिपोर्ट पैरा १५८]। अन्नमदेव ने तारलापाल ग्राम में माई दंतेश्वरी का मंदिर बनवाया। देवी के नाम पर ग्राम का नया नामकरण 'दंतेवाड़ा हुआ। वारंगल और वस्तर में कुल ४५ वर्षों तक शासन करने के पश्चात अन्नमदेव सन १३५८ ई० में स्वर्गारुढ़ हुए। उनके उत्तराधिकारी राजा हमीर देव हुए।

वस्तर में नए राजवंश के संस्थापक अन्नमदेव के पूर्वज पांडव वंश थे। दिल्ली से मथुरा और मथुरा से वे वारगल पहुंचे थे। वारंगल

इन्होंने अपने को काकतीय कहलाना प्रारंभ किया । पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने लिखा है — 'गुरुद्रोणाचार्य की शिष्य परंपरा के कारण इन्होंने अपने वंश का नाम रखा 'काकतीय'। संस्कृत में काक (कौआ) को द्रोण भी कहते हैं। इस नाम सादृश्य के कारण द्रोणीय परंपरा हुयी 'काकीय' अथवा काकतीय परंपरा [छत्तीसगढ़ परिचय पृ० ५६] अपने पूर्वज के गुरु के प्रति आदर प्रकट करने का यह अनूठा दृष्टांत है। वारंगल साम्राज्य की सीमा के भीतर उन्होंने अपने पूर्वज के गुरु के नाम पर काकतीपुर नगर बसाया। कई शिलालेखों में वारंगल के शासकों के लिए 'काकतीपुर के स्वामी' विशेषण का प्रयोग किया गया है। यह काकतीपुर कौन सा स्थल था इसका निर्धारण आद्यतन नहीं हो पाया है।

बस्तर के काकतीय शासकों में अन्नमदेव के पश्चात हमीर देव और उसके पश्चात भैराज देव का उल्लेख मिलता है। इन दोनों शासकों ने नव स्थापित राज्य को सुसंगठित व व्यवस्थित करने का कार्य संपन्न किया।

चौथे शासक पुरुषोत्तम देव का शासन काल घटना प्रधान रहा। फागुन कृष्ण ४ संवत १४६५ (१४०८A.D.) इनका सिहासना रोहण तिथि है। काकतीय शासकों को मुसलमान आक्रमणकारियों के कारण न केवल वारंगल से भागना पड़ा था वरन बस्तर में भी वे शांति पूर्वक नहीं रह पा रहेथे। दक्षिण सीमा की ओर से आक्रमण की आशंका सदैव बनी रहती थी ऐसी स्थिति में राजधानी को सुरक्षित स्थान पर ले जाना अति आवश्यक था। अन्नमदेव के समय से मधोता राजधानी थी। संपूर्ण प्रकरण पर गंभीरता पूर्वक विचार करने के पश्चात राजा पुरुषोत्तम देव ने राजधानी इन्द्रावती नदी के उत्तरी किनारे पर स्थापित करने का निर्णय लिया। इससे मुसलमान आक्रमणकारियों से सामना करने के समय इन्द्रावती एक खाई के रुप में प्रयुक्त हो सके। इन्द्रावती नदी के उत्तर में एक खुला मैदान उपलब्ध था। वहीं पर राजधानी बसाया गया। नयी राजधानी का नाम बस्तर रखा गया। वर्तमान में जगदलपुर से १८ कि० मी० दूर स्थित बस्तर ग्राम ही वह स्थल था सी० ग्लासफर्ड की रिपोर्ट में इसका उल्लेख मिलता है।

राजा पुरुषोत्तम देव के शासन काल की दूसरी महत्वपूर्ण घटना, राजा द्वारा तीर्थ स्थल जगन्नाथ पुरी की यात्रा करना है। एक समूह के

साथ राजा इस यात्रा में निकले, बस्तर के किसी काकतीय शासक की यह पहली पुरी यात्रा थी। राजा के पास साधनों की कोई कमी नहीं थी। हाथी, घोड़े या गाड़ी का प्रयोग न कर राजा अतिशय कष्ट सहन करते हुए, पुरी की ओर बढ़े। सबसे कठिन यात्रा दंडवत करते बढ़ने की है। कहा जाता है कि तीर्थ यात्रा में जितना कष्ट मिले उतना पुण्य प्राप्त होता है। दंडवत करते बढ़ने वाले जमीन पर दंडवत लेट जाते हैं। फिर घुटनों के बल आगे बढ़ते हैं और जहां पर दंडवत लेटने से सिर आता है वहीं पर पैर रखकर फिर दडवत लेटते हैं और इसी क्रम में आगे बढ़ते जाते हैं। ।इस यात्रा में समय तो अधिक लगता ही है, कष्ट भी अधिक सहन करना पड़ता है। हाथ पैर, घुटना, कहिये सारा शरीर लहुलुहान हो जाता है। महिनों इसी प्रकार कष्ट सहन करते पुरुषोत्तम देव जगन्नाथपुरी पहुंचे। भगवान जगन्नाथ स्वामी राजा की इस कष्ट साध्य यात्रा से बेहद प्रसन्न हुए। प्रमुख पुजारी व राजा को स्वप्न में भगवान ने पुरुषोत्तम देव के बारे में बतलाया। पुरी के राजा ने पुरुषोत्तम देव का स्वागत किया और राजा को वापसी के समय १६ पहियों वाला रथ प्रदान किया। राजा पुरुषोत्तम देव रथ निर्माण करने वाले बढ़ाइयों का एक दल तथा पूजा अर्चना करने वाले ब्राह्मणों का दूसरा दल साथ लेकर बस्तर लौटे। १६ पहियों वाले रथ के चार पहिये तो राजा ने जगन्नाथ स्वामी को ही सौंप दिये। चार पहिये वाले रथ पर जगन्नाथ स्वामी की शोभा यात्रा निकालने का क्रम पुरुषोत्तम देव ने प्रारंभ करवाया शेष १२ पहिये राजा ने अपनी इष्ट देवी दंतेश्वरी की सवारी के लिए अर्पित किया। दशहरा के अवसर पर राजा स्वयं देवी की मूर्ति के साथ रथारुढ़ होने लगा। रथ निर्माण में परेशानी को देख १२ पहियों के स्थान पर ८ और ४ पहियों के दो रथ निर्मित किए जाने लगे। दोनों पर देवी को क्रमशः घुमाने की व्यवस्था की गई। रथ पर देवी की मूर्ति को रखकर परिक्रमाका विधान इसी समय से प्रारंभ हुआ। (बस्तर भूषण पृ० १३९) पुरुषोत्तम देव ने जगन्नाथपुरी की यह तीर्थ यात्रा कब की? इसकी स्पष्ट तिथि ज्ञात नहीं है। बस्तर राजवंश से संबंधित कुवंर बाल मुकुन्द सिंह ने अपनी पुस्तक 'बस्तर का इतिहास [अप्रकाशित] में संवत १४६६ —६७ यात्रा का काल दर्शाया है। यह तिथि ठीक प्रतीत होती है। राजा ने सिंहासनरोहण के पश्चात से मनः स्थिति तीर्थ यात्रा के लिए बनाया

होगा और दो वर्ष के अंतराल में यात्रा संपन्न कर ली होगी।

राजा पुरुषोत्तमदेव भक्त-स्वभाव के थे। शासन काल के प्रारंभ में ही जगन्नाथ पुरी की तीर्थ यात्रा इसका प्रमाण है। वस्तर के काकतीय शासकों की इष्ट देवी दंतेश्वरी थी। अन्नम देव ने दंतेवाड़ा में देवी का मंदिर निर्मित करवाया था। उसके पश्चात से मंदिर में कोई विस्तार कार्य नहीं हुआ था। पुरुषोत्तम देव स्वभावतः इस ओर प्रेरित हुए दंतेवाड़ा के मंदिर में एक नया कक्ष उन्होंने निर्मित करवाया (लेफ्टि. कर्नल इलियट की रिपोर्ट पृ० २१)

अपना साम्राज्य विस्तृत करना हर शक्तिशाली शासक चाहता है। राजा पुरुषोत्तम देव इसके अपवाद नहीं थे। काकतीय शासकों की राजधानी जब 'वस्तर' में स्थापित हुयी तब वस्तर की राजनीति में परिवर्तन आया। दक्षिण भारत से उनका संपर्क क्रमशः कम होता गया। उत्तर भारत की राजनीति से वे जुड़ने लगे। रायपुर-रतनपुर के शासक की शक्ति का आकलन गलत हुआ। गलत आकलन असफलता का कारण सिद्ध हुआ। पुरुषोत्तमदेवका इन पर आक्रमण सफल नहीं हुआ, असफलता के बावजूद रायपुर पर आक्रमण महत्वपूर्ण सिद्धहुआ। वस्तर भी एक सीमावर्ती राज्य है और उस पर भी ध्यान रखना है यह सीख रायपुर-रतनपुर के शासकों को मिल गई। पुरुषोत्तम देव परास्त हुए मगर रायपुर रतनपुर के शासकों को यह हिम्मत नहीं हुयी कि वे आगे बढ़कर वस्तर के किसी भाग पर अधिकार कर लें। किसी प्रकार का वार्षिक कर प्राप्त करने में भी वे सफल नहीं हुए। पुरुषोत्तम देव का घटना प्रधान शासन काल सन १४४० ई० में समाप्त हुआ। इनका बत्तीस वर्षीय शासन काल बस्तर के इतिहास में महत्वपूर्ण रहा।

काकतीय वंशी पांचवें शासक जयसिंह वस्तर में १८ वर्षों तक शासन किए। छठवें शासक नरसिंह देव चवालीस वर्षों तक शासक रहे। इन दोनों शासकों का शासन काल विशेष उल्लेखनीय नहीं रहा।

सातवें शासक प्रताप देव हुए। सन १५०१ ई० में वे राजगद्दी पर बैठे। प्रसिद्ध मुसलमान इतिहास कार फरिश्ता ने इसे प्रताब शाह लिखा है। इसे गोड़ जाति का बतलाया है। इसका शासनकाल भी उन्होंने गलत लिखा है। प्रताप देव महत्वाकांक्षी शासक थे। अपने राज्य का बिस्तार करने के उद्देश्य से उन्होंने सीमावर्ती मुस्लिम राज्य पर आक्रमण किया मगर पासा उलटा पड़ा। मुस्लिम सेना भारी पड़ी। प्रताप देव

को जंगल में छिपना पड़ा। मुस्लिम सेना राजधानी तक बढ़ गयी। बस्तर की जलवायु प्रतिकूल सिद्ध हुयी, रसद की पूर्ति समस्या बनी। अपने राज्य से बहुत दूर आ जाने के अहसास ने मुस्लिम सेना का मनो-बल कमजोर कर दिया। सेना बिना विजय प्राप्त किए वापस लौट गयी। दक्षिण की ओर साम्राज्य विस्तार में सफल न हो सकने पर प्रताप देव ने अपना ध्यान उत्तर की ओर केन्द्रित किया। डोंगर के आस पास के अठारह गढ़ उन्होने जीत लिए। ये अठारह गढ़ अपने भाई के सुपुर्द किए। इसी समय से बस्तर के काकतीय शासकों की दो शाखायें हुयीं एक बस्तर में रहकर शासन करती थी। दूसरी डोंगर में शासन करती थी। (छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेट्स पृ० ३७) २४ वर्षों तक शासन करने के पश्चात प्रताप देव की मृत्यु हुयी।

आठवें शासक जगदीशराय चौबीस वर्षों तक शासन किए। नवें शासक वीर नारायण पांच वर्षों तक शासन किए। दसवें शासक बीरसिंह देव हुए। सन १५५३ से १६२४ ई० तक उनका शासन काल रहा जो कि दीर्घकाल था। ग्यारहवें शासक दृगपाल देव हुए। कुछ स्थलों पर इन्हें दिकपाल देव भी लिखा है। इनके शासन काल की प्रमुख घटना नवरंगपुर विजय रही। २९ वर्षों तक उनका शासन काल रहा। आइने अकबरी में लिखा है कि अकबर के समय में बस्तर हाथियों के लिए प्रसिद्ध था।

बस्तर के काकतीय शासकों की श्रृखला में बारहवे क्रम पर रक्षपाल देव हुए। ये राजपाल देव के नाम से भी जाने जाते हैं। अगहन वदी ७ संवत १७०६ में वे राजगद्दी पर बैठे। इनके शासन काल में बस्तर पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ। मुसलमानों को प्रारंभिक सफलता मिली। राजपाल की गर्भवती रानी रुद्र कुवंर बघेलीन आक्रमण कारियों से बचने के लिए एक ब्राह्मण के यहाँ शरण ली। ब्राह्मण के घर में रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। यही बालक आगे चलकर बस्तर का प्रतापी राजा दलपत देव हुआ। ब्राह्मण ने रानी के खोज में आए मुसलमान सैनिकों को यह कह कर चकमा दे दिया कि यह [रानी] मेरी बहू है, रानी नहीं है। आक्रमण कारियों के पीछे हटने के पश्चात राजा राजपाल देव को रानी ने पूरी बात बतलायी। ब्राह्मण ने जो अहसान किया उसका बदला चुकाना आवश्यक था। राजा ने कुछ गांव ब्राह्मण को दिए ही, कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उसे अपना गुरु बनाया।

अपना गोत्र वदलकर ब्राह्मण का गोत्र 'कश्यप' अपनाया। इसी समय से बस्तर राजाओं का गोत्र 'अत्री' के स्थान पर 'कश्यप' हुआ [लोहंडीगुड़ा तरंगिनी पृ० ३५] राजा राजपाल देव ने कृतज्ञता ज्ञापित करने का नया ढंग प्रस्तुत किया।

ब्राह्मण ने राजा को वहुत प्रभावित किया। इसी समय समाचार मिला कि पापड़ाहांडी का राजा ब्राह्मणों को वहुत सता रहा है। राजा के क्रोध का पारावार न रहा। सेना सजाकर आक्रमण किया गया, पापड़ाहांडी के राजा को परास्त किया, वहां के ब्राह्मणों को सादर बस्तर लाकर वसाया गया। राजपाल देव के समय की एक और उल्लेखनीय घटना डोंगर और वस्तर सिंहासन पर एक ही व्यक्ति का बैठना था। तीन पीढ़ी पूर्व दो शाखायें हो गयी थी। अव एक ही शासक हुए। कनिष्ठ शाखा डोंगर की थी उसी के अधिकार में दोनों भाग आए। राजा को लहुरा गजपति' कहा जाने लगा। लहुरा याने कनिष्ठ-छोटा [छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेटस् पृ० ३७]

राजपाल देव की पहली पत्नी चन्देलिन रानी थी। इससे लाल दक्खिन सिंह पैदा हुए। दलपत देव वघेलिन रानी के पुत्र थे। तीसरा पुत्र प्रतापसिंह था जिसके नाम पर प्रतापपुर गांव का नामकरण हुआ। चन्देलिन रानी इन दोनों राजकुमारों से घृणा करती थी। दलपत देव को कोटपाड़ में और प्रतापसिंह को अन्तागढ़ प्रतापपुर में रहने को विवश किया गया। राजपाल देव राजनगर में रहते थे। दक्खिन सिंह की मृत्यु दन्तेवाड़ा में हुयी। कहा जाता है कि दक्खिन को यमराज के क्रूर पंजे से बचाने के लिए मुमुर्ष अवस्था में दन्तेवाड़ा की दन्तेश्वरी देवी की मूर्ति से बांध दिया गया। मृत्यु का पल निकट आने पर रस्सी टूट गयी और दक्खिन सिंह भूमि पर गिरकर मृत्यु को प्राप्त हुये [लाल कालेन्द्र सिंह का लिखित वयान १८ अगस्त १९०८ ई०. माई दन्तेश्वरी ने मृत्यु के मामले में हस्तक्षेप करने से इंकार कर दिया। राजा राजपाल देव युवराज को मृत्यु से टूट गये और एक वर्ष पश्चात ही उनका भी स्वर्गवास हो गया।

राजा राजपाल देव की मृत्यु के पश्चात रानी चंदेलिन ने स्थिति का फायदा उठाया। दलपत देव कोटपाड़ की जागीर में और प्रतापसिंह प्रतापपुर की जागीर में थे। रानी ने इनमें से किसी को नहीं बुलाया और

चालाकी पूर्वक अपने ही भाई को वस्तर राजगद्दी पर आसीन कर दिया। राजपाल देव का सबसे छोटा पुत्र तो खिन्न होकर बस्तर रियासत छोड़ कर रीवा [सोहागपुर] चला गया। दलपत देव वक्त के मारे वस्तर छोड़ निकटवर्ती रियासत जयपुर चले गये और बस्तर के घटना क्रम पर कड़ी नजर रखे रहें। रक्षा बंधन के त्यौहार के दिन दलपत देव वस्तर लौटे और चंदेल राजा को राजगद्दी पर ही मार डाला और स्वयं बस्तर के राजा वन बैठे [लाल कालेन्द्र सिंह का लिखित वयान १८ अगस्त १९०८ ई०] दक्खिन सिंह की मृत्यु के पश्चात राजगद्दी दलपत देव को मिलनी थी मगर सौतेली मां की डाह ने उसे गद्दी से वंचित कर दिया। दलपत देव का पुरुषार्थ विजयी रहा। खतरा मोल लेकर वस्तर आये और निश्चित रुप मे दरवारियों की सहायता से अपना वैध दावा प्राप्त किया। एक वर्ष तक चंदेल राजा बस्तर में रहा तत्पश्चात काकतीय शासकों की श्रृखंला प्रारंभ हुयी।

राजा दलपत देव –

वस्तर के काकतीय शासकों को श्रंखला में तेरहवें क्रम पर दलपत देव आते हैं। इनका सिंहासनारोहण संवत १७७३ [= १७१६ A. D.] में हुआ। प्रारंभ से ही संघर्षपूर्ण स्थितियों से उन्हें गुजरना पड़ा। पिता की आकस्मिक मृत्यु हुयी। सौतेली माँ ने अपने भाई को वस्तर की राजगद्दी पर बैठाया। दलपत देव गद्दी पुन. काकतीय वंश के अधिकार में लाए। दलपत देव का शासन काल घटना प्रधान रहा, महत्वपूर्ण घटनायें इनके शासन काल में घटित हुई। राजगद्दी पुनः प्राप्त करने में जिस साहस धैर्य और चालाकी का प्रदर्शन उन्होंने किया था उससे उनकी योग्यता की झलक मिलता है। राज दरवार के लोगों की सहायता से, उन्हें अपनी ओर मिलाकर उन्होंने अपना वैध अधिकार प्राप्त किया [छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेटस् पृ० ३७]

राजा दलपत देव का काल मुख्य रुप से मराठों के वस्तर आक्रमण राजधानी परिवर्तन और मुसलमानों के बस्तर आक्रमण के लिए प्रसिद्ध है। मराठों का पहला आक्रमण बस्तर पर हुआ। मध्य भारत और अपने साम्राज्य के पूर्वी भाग पर प्रभाव स्थापित करने की ललक मराठों में सदैव से रही। इसके लिए वे सतत् प्रयासरत थे। वस्तर के घने वन उन्हें इस प्रदेश में प्रविष्ठ होने से रोके हुए थे। वस्तर के विस्तृत भू-

उन्हें आकर्षित कर रहा था। सन् १७०७ ई० में मराठों ने पूर्व की ओर अपने साम्राज्य को प्रसारित करने की एक वृहत योजना बनाई। रघोजी भोंसला को यह कार्य सौंपा गया। रघोजी, छत्रपति साहू के परमप्रिय पात्र थे। छत्रपति साहू ने उन्हे सेना साहिब-सूबा के पद पर नियुक्त किया। इस अवसर पर जो सनद रघोजी को दिया गया उसमें उसके प्रभाव-क्षेत्र का वर्णन किया गया था। इस सूची में 'बस्तर-प्रांत भी सम्मिलित था [नागपुर कर भोंसल्यांची बाखर पृ० ३०] इस सनद से स्पष्ट होता है कि बस्तर मराठों की निगाह में था। बस्तर राजा भले ही अपने को पूर्ण रुप से स्वतंत्र मानते रहे हों मगर जहां तक मराठों का सवाल है, वे बस्तर को अपने प्रभाव-क्षेत्र के अंतर्गत ही मानते थे। मराठों को घर के भेदिये की तलाश थी जिसकी 'सहायता से वे बस्तर पर कारगर पकड़ स्थापित कर सके। सौभाग्य से उन्हें दलपत देव के भाई प्रतापसिंह के रुप में ऐसा व्यक्ति मिल गया।

राजगद्दी का मोह कुछ ऐसा होता है कि व्यक्ति इसे प्राप्त करने के लिए नैतिक-अनैतिक सभी साधनों का प्रयोग करने से नहीं चूकता। अपने ही भाई के विरुद्ध प्रताप सिंह ने मराठों से मिल कर षड़यंत्र रचा। अत्यत गोपनीय ढंग से एक समझौता हुआ। इसके अनुसार मराठों ने दलपत देव को हटाकर प्रतापसिंह को बस्तर की राजगद्दी पर बैंठाने में पूर्ण सहायता देना स्वीकार किया। [सी० ग्लासफर्ड रिपोर्ट, पैरा १५९] इस समझौते के द्वारा दोनों पक्ष अपने-अपने हितों की पूर्ति की अपेक्षा रखते थे। प्रतापसिंह को बस्तर की राजगद्दी चाहिए थी और मराठों को बस्तर से ट्रिब्यूट। स्वतंत्र बस्तर को मराठा-प्रभुत्व में लाने में सहायता देकर प्रतापसिंह ने अपने को कलंकित किया।

राजा दलपत देव इन षड्यंत्रों से नावाकिफ थे। अचानक एक मराठा सेना को अपनी राजधानी के निकट पाकर वे किंकर्तव्य विमूढ़ हो गए। रायपुर की ओर से मराठों की सेना बस्तर पहुंची थी। दलपत देव की तैयारी नहीं थी। उनके सैनिक पर्याप्त संख्या में नहीं थे। सैन्य तैयारी नहीं थी। ऐसी स्थिति में सुसज्जित मराठा सेना से युद्ध करना बुद्धिमतापूर्ण नहीं था। राजा दलपत देव ने युद्ध न कर भाग खड़ा होना बेहतर समझा। बस्तर का घना वन हमेशा से यहां के शासकों के लिए सुरक्षा प्रकोष्ठ के रुप में प्रयुक्त होता रहा। राजा अपने सैनिकों, दर-

वारियों के साथ घने वन में जा छिपे। मराठा सेनापति नीलू पंडित इस सफलता से बेहद प्रसन्न हुए। बिना किसी संघर्ष के वस्तर पर अधिकार कल्पनातीत था। राजा के पलायन को उसने पूर्ण विजय समझा और आवश्यक सावधानी नहीं वरती, दलपत देव की कोई खोज-खबर नहीं ली। इस चूक की सजा उसे भुगतनी पड़ी।

आकस्मिक आक्रमण से दलपत देव राजधानी छोड़ कर भाग गए हुए थे, मगर वे निराश नहीं हुए थे। वस्तर के सैनिक वड़े जीवट के अपने राजा के सम्मान की रक्षा के लिए उन्होंने लड़ते-लड़ते मर जाना बेहतर समझा। राजा दलपत देव भी निष्क्रिय नहीं पड़े रहे। शीघ्रता कार्यवाही अपेक्षित थी। मराठों के पैर वस्तर में जमे इससे पूर्व ही कार्यवाही आवश्यक थी। जिस प्रकार से आकस्मिक आक्रमण कर मराठों सफलता पायी थी उसी प्रकार आकस्मिक आक्रमण दलपत देव ने मराठों पर किया। मराठे सोच भी नहीं सकते थे कि पलायित राजा लड़ने लिए लौटेगा। मराठों ने लड़ने का उपक्रम किया मगर पूरी तरह परास्त हुए। सभी आक्रमणकारी मौत के घाट उतार दिए गए। मगर सेनापति नीलू पंडित वहुत मुश्किल से एक बंजारे की सहायता से में वन्द होकर वस्तर सीमा से निकल वाहर हो सका [सी० ग्लासफर्ड रिपोर्ट, पैरा १५९] वस्तर पर मराठों का यह आक्रमण अंशकालीन लता दिलाने वाला रहा। राजा दलपत देव ने जिस शौर्य, वीरता चतुराई से मराठों को वस्तर में धूल चटाया वह वस्तर इतिहास उल्लेखनीय घटना है।

वस्तर पर मराठों का आक्रमण पूर्ण रूप से असफल रहा। आक्रमण ने राजा दलपत देव को यह अहसास करा दिया। कि राजधानी सुरक्षित स्थल पर नहीं है। चौथे काकतीय शासक पुरुषोत्तम देव ने राजधानी को इन्द्रावती नदी के उत्तर में स्थापित कर मुसलमानों के आक्रमण से राजधानी को सुरक्षित रखने की व्यवस्था की थी। दलपत देव के काल के आते आते स्थिति और परिवर्तित हो गई। वस्तर पर आक्रमण की आशंका उत्तर की ओर से थी अत. राजधानी को इन्द्रावती नदी के दक्षिण में स्थानांतरित करना आवश्यक हो गया। नई राजधानी के लिए उपयुक्त स्थल तलाशा जाने लगा [सी० ग्लासफर्ड रिपोर्ट पैरा १५९] राजा दलपत देव शिकार के वड़े शौकिन

उनके पास अच्छे शिकारी कुत्ते थे। एक दिन वे शिकार के लिए इन्द्रावती नदी के दक्षिणी प्रदेश में घूम रहे थे। इसी मध्य एक ऐसी अनहोनी घटना घटित हुई जिसने राजा की राजधानी-तलाश पूरी कर दी। शिकारी कुत्ते एक खरगोश पर झपटे। खरगोश भागने के स्थान पर संघर्ष करने की मुद्रा में खड़ा हुआ। शिकारी कुत्ते उसका यह रुप देखकर उल्टे भाग खड़े हुए। राजा दलपत देव यह दृश्य देखकर हतप्रभ रह गए। राजधानी लौटने पर आंखों देखा हाल दरबारियों को सुनाया। सभासदों ने राय दी कि वह स्थल जहाँ पर यह घटना घटित हुई है अति उत्तम स्थल है [लोहंडीगुड़ा तरंगिनी पृ० ४६] सभी ने राय व्यक्त की कि नई राजधानी वहीं पर स्थानांतरित की जाय। उस काल में इन्द्रावती नदी के दक्षिण का वह भू-भाग जगदु महार के अधिकार में था। राजा ने जगदु महार से येन-केन- प्रकारेण वह स्थल प्राप्त किया और अपनी नयी राजधानी निर्मित की। स्थल का नया नामकरण 'जगदलपुर' हुआ।

वस्तर से जगदलपुर राजधानी-परिवर्तन किस तिथि को हुआ, यह ज्ञात नहीं हो पाया है। काकतीय वंश के शासक प्रवीरचन्द्र भंजदेव ने अपनी पुस्तक में लिखा है -- "जगदलपुर के गढ़ बनने के तीन वर्ष के पश्चात् दलपत देव महाराज की जीवन-लीला समाप्त हुयी।" दलपत देव को मृत्यु संवत् १८३२ [=१७७५ A. D.] में हुयी। इस हिसाब से १७७५-३=१७७२ ई० राजधानी परिवर्तन का निकलता है। गढ़ बनना यानि कि राजधानी बनना मानना चाहिए।

राजधानी परिवर्तन आक्रमण से बचाव के लिए किया गया था मगर राजधानी स्थानांतरित होते ही वस्तर पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ। वस्तर के जमीदारों ने सीमावर्ती मुस्लिम राज्यों पर छुट-पुट आक्रमण कर उन्हें परेशान कर डाला। इस आक्रमण व लूटमार से बचने के लिए मुसलमान सैनिक बस्तर पर आक्रमण करते हैं। राजधानी जगदलपुर तक वे पहुंच जाते हैं। जिस स्थल पर उनकी छावनी थी वह आज भी मुगल टोकरी के नाम से जाना जाता है। जगदलपुर के बड़े-बूढ़ों से पूछने पर वे बतलाते हैं कि वर्तमान वन-विद्यालय के पास ही वह छावनी थी। जगदलपुर स्थित गढ़ जीतने में आक्रमण-कारियों को सफलता नहीं मिली। उनके सैनिक बीमार पड़ने लगे। अस्वास्थ्यकर जलवायु व रसद

की कमी ने आक्रमण-कारियों को पीछे हटने के लिए बाध्य किया। वे लौट गए [ग्लासफर्ड रिपोर्ट, पैरा १५९] मुसलमानों के आक्रमण की असफलता ने राजा दलपत देव के गौरव को और बढ़ाया। ऐसा प्रतीत होता है जगदलपुर से लगा हुआ दलपत सागर, राजा दलपत देव ने ही सुरक्षा के दृष्टिकोण से खुदवाया।

चौदहवें शासक दरियाव देव –

बस्तर के चौदहवें शासक दरियाव देव दलपत देव के पुत्र थे। सन् १७७५ ई० में उनके सिंहासनारोहण के प्रश्न पर राजपरिवार में गृह-युद्ध की स्थिति निर्मित हुयी। पटरानी का पुत्र राजगद्दी पर बैठता है यह विधान है। दलपत देव की पटरानी का पुत्र अजमेर सिंह था परन्तु संभवतः अल्प-वयस्क होने के कारण उन्हें राजगद्दी नहीं मिली। दूसरी रानी का पुत्र दरियाव देव ३८ वर्ष के हो चुके थे, वे ही राज-गद्दी पर बैठे।

सिंहासन पर अधिकार के प्रश्न पर एक लम्बा युद्ध दोनों भाइयों अजमेर सिंह और दरियाव देव के मध्य चला। कभी कोई जीता कभी कोई। राजपरिवार के इस गृह-युद्ध का अंतिम परिणाम बस्तर के लिए शुभ नहीं रहा। संघर्ष के पूरे काल में अस्थिरता का वातावरण निर्मित रहा। बस्तर के मामले में हस्तक्षेप करने का मौका ढूंढ रहे पड़ोसी राज्यों को सुनहरा अवसर मिला। बस्तर के मामले में हस्तक्षेप के लिए तैयार तीन शक्तियाँ थी- (१) जयपुर (२) कांकेर (३) मराठे। तीनों शक्तियों ने इस गृह-युद्ध में भाग लेकर अपना उल्लू सीधा करने का प्रयास किया।

दरियाव देव बस्तर की गद्दी पर दो वर्ष ही बैठ पाए थे कि उनके भाई अजमेर सिंह ने कांकेर रियासत की सहायता से मालकोट नामक स्थल पर उन्हें परास्त कर दिया [लोहंडीगुड़ा तरंगिनी पृ० ४७] दरियाव देव किसी प्रकार अपनी जान बचाकर भाग निकले। सोमावती राज्य जयपुर में उन्होंने शरण ली। गंभीर परिस्थिति पर गंभीरतापूर्वक विचार कर दरियाव देव ने राजगद्दी जल्दी से जल्दी पुनः प्राप्त करना अपना सर्वोपरि लक्ष्य निर्धारित किया। बिना किसी बड़ी शक्ति की सहायता प्राप्त किए। यह संभव नहीं था। जयपुर राजा से शरणार्थी राजा दरियाव देव ने संधि की। इसके अनुसार कोटपाड़, चुरचिंगा

पोड़ागढ़, रायगढ़ और उमरकोट [ये पांचो कोटपाड़ परगना के नाम से जाने जाते हैं] जयपुर राजा को निम्न शर्तों पर दिए गए– (१) जयपुर राजा बस्तर राजा की सहायता करेगा यदि मराठे उसे अनावश्यक रुप से परेशान करेंगे। (२) बस्तर राजा को इन परगनों से महादान नामक कर वसूलने का अधिकार रहेगा [१०० बैलगाड़ियों पर लदे व्यापारिक माल पर २५ रु० का कर महादान कहलाता था]

जयपुर रियासत से कोटपाड़ परगना देकर संधि करने के पश्चात् राजा दरियाव देव ने मराठों को भी अपनी ओर मिलाना आवश्यक समझा। मराठा सरदार बिम्बाजी [जो उन दिनों रायपुर में थे] से राजा ने सहायता प्राप्त की। इस शर्त पर सहायता मिली की बस्तर राजा प्रतिवर्ष चार हजार रुपए मराठों को देगा [ग्लासफर्ड रिपोर्ट, पैरा १६०]

इधर दरियाव देव अपनी स्थिति मजबूत करने में लगा था। संधि पर संधि कर रहा था, उधर बस्तर में राजा अजमेर सिंह की स्थिति खराब हो रही थी। कांकेर की सहायता ने सांप–छछुन्दर की गति ला दी। कांकेर वालों से अनबन होने लगी और कांकेर की सेना अजमेर सिंह को मझधार में छोड़कर कांकेर लौट गयी [लोहंडीगुड़ा तरंगिनी पृ० ४७]

दरियाव देव को इसी अवसर की प्रतीक्षा थी। वे जयपुर राजा के सैनिकों के साथ आगे बढ़े। मराठा टुकड़ी त्र्यम्बक अबीर राव के नेतृत्व में आगे बढ़ी। इस सम्मिलित सेना ने अजमेर सिंह को परास्त किया। अजमेर सिंह भागकर डोंगर में शरण लिए। अजमेर सिंह परास्त हुए थे मगर उनके हौसले पस्त नहीं हुए थे। कुछ काल पश्चात् उसने जगदलपुर पर पुनः आक्रमण किया। दरियाव देव ने अजमेर सिंह को संधि वार्ता के लिए बुलवाया। अजमेर सिंह खुली पालकी में भेंट करने आया। दरियाव देब ने धोखे से उस पर आक्रमण कर उन्हें तलवार से घायल कर दिया [लोहंडीगुड़ा तरंगिनी, पृ० ४८] तलवार का घाव घातक रहा। इसी घाव से बाद में अजमेर सिंह की मृत्यु हुयी [छत्तीसगढ़ पयूडेटरी स्टेटस् पृ० ३८] अजमेर सिंह काफी समय तक राजा दरियाव देव के लिए समस्या रहे।

बड़े डोंगर के इलाके से अजमेर सिंह को सहायता मिलती थी।

राजा दरियाव देव ने इस इलाके के लोगों को दंडित करने का निश्चय किया। परम्परागत ढंग से बस्तर में राजा दरियाव देव के काल में हलबा जाति के विद्रोह का प्रकरण मिलता है। इस विद्रोह को बड़ी कड़ाई से राजा ने दबाया। अनेक विद्रोही हलबा ९० फुट ऊंचे जल-प्रपात से नीचे फेंक दिए गए। इनमें से केवल एक बचकर भाग सका। शेष सभी मर गए। विद्रोह में भाग लेने के दंड स्वरुप कई हलबा नेताओं की आंखे फोड़ दी गई। १७७९ ई० में यह विद्रोह दबाया गया। डोंगरगढ़ के शिलालेख में इसका वर्णन मिलता है (रसेल व हीरालाल ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ द सेन्ट्रल प्राव्हिन्सेस ऑफ इंडिया पृ० १८५)

परिस्थिति से वाध्य होकर दरियाव देव ने कोटपाड़ परगना जयपुर को सौंप दिया था मगर हृदय से वह ऐसा नहीं चाहता था। बस्तर की राजगद्दी पुनः प्राप्त कर लेने और अपनी स्थिति मजबूत कर लेने के पश्चात उसने कोटपाड़ परगना की ओर ध्यान दिया। १७८२ ई० में अनवन की शुरुआत हुयी। बस्तर राजा ने जयपुर राजा पर आरोप लगाया कि वह कोटपाड़ परगना संवधी संधि शर्तों का पालन नहीं कर रहा है। राजा दरियाव देव ने आक्रमण कर पांच में से तीन गढ़ जीत लिए। ये गढ़ थे — पोड़ागढ़, रायगढ़ और उमर कोट। शेष दोनों गढ़ भी वे जीत लिए होते मगर उनकी आकस्मिक मृत्यु ने ऐसा नहीं होने दिया।

जयपुर सीमा पर दरियाव देव उलझा हुआ था। इस स्थिति का फायदा उठाकर दक्षिण की ओर हैदराबाद के शासक ने चरेला वंश और राकापल्ली की ज़मींदारियों पर अधिकार कर लिया (छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेट्स पृ० ३८)

राजा दरियाव देव के शासन काल में यूरोपीय यात्री कैप्टन ब्लन्ट्स १७९५ ई० में बस्तर के कुछ भागों से गुजरा। क़ांकेर के राजा सामंत ने कैप्टन ब्लन्ट्स को बस्तर राजा के विरुद्ध कई गलत बाते बतलाई दरियाव देव विश्वघाती है वह काफी शक्तिशाली है। ४८ परगनों का स्वामी है। पिता की मृत्यु के पश्चात गद्दी पर बैठते ही अपने भाइयों की आंखें फोड़वा दी है और उन्हें कैद रखा है। अपनी ही प्रजा के साथ उसका व्यवहार अच्छा नहीं है। अपने संबंधियों को उसने मार लिया है। मराठों से बचने के लिए जगदलपुर छोड़कर केसलूर को राजधानी

धानी बनाया है [अर्ली यूरोपियन ट्रैव्हलर्स इन द नागपुर टेरिटरी—पृ० १३३ – ३४]

उपरोक्त वर्णन में से अधिकांश बेंबुनियाद हैं। ध्यातव्य है कि कांकेर के शासक ने दरियाव देव के विरुद्ध अजमेर सिंह का साथ दिया था और वस्तर में कारगर हस्तक्षेप करने में असफल रहे थे। इस पृष्ठ-भूमि में स्वाभाविक है, कांकेर राजा, दरियाव देव की आलोचना करे।

दरियाव देव का घटना प्रधान शासन काल सन् १८०० ई० में समाप्त हुआ। वे २५ वर्षों तक शासक रहे। महाराज दरियाव देव के एक मंत्री भाट थे। इस भाट मंत्री ने एक ब्राह्मण के गाँव को राजसात किया। इस पर दुखी होकर ब्राह्मण ने आत्म-हत्या कर ली। राजा दरियाव देव को पूर्ण प्रकरण ज्ञात हुआ। ब्राह्मण को आत्म-हत्या के लिए उन्होंने अपने को कारणीभूत माना। अत्यधिक दुख ने उन्हें पागल बना दिया। १८०० ई० में उनका स्वर्गवास हुआ।

अध्याय—चार

मराठा पराश्रितता में काकतीय शासक

वस्तर को अपना करद राज्य बनाने और वहाँ अपनी पकड़ स्थापित करने का स्वप्न मराठे वर्षों मे देख रहे थे। इस स्वप्न को मूर्त रुप देने के लिए उन्होंने राजा दलपत देव के शासन काल में वस्तर पर आकस्मिक आक्रमण किया था मगर मुँह की खाई थी। वस्तर का आकर्षण और पराजय की टीस —एक अजीब मनः स्थिति में मराठे थे। राजा दलपत देव की मृत्यु के पश्चात् वस्तर में गृह युद्ध की स्थिति निर्मित हुई। मराठों को ऐसे अवसर की प्रतीक्षा थी। वस्तर का पद्च्युत शासक दरियाव देव स्वंय संधि की याचना कर रहा था। लोहा गरम था और मराठे चोट करने से नहीं चूके। दरियाव देव द्वारा याचित सहायता तो उन्होंने दी मगर ऐसी शर्त रखकर, जिससे वस्तर की स्वतन्त्र स्थिति समाप्त हो गई। अन्नमदेव के समय से वस्तर के काकतीय शासक पूर्ण प्रभुता सम्पन्न शासन करते आ रहे थे। राजा दरियाव देव ने अपनी व्यक्तिगत हितों की परिपूर्ति हेतु मराठों को वार्षिक कर देना स्वीकार किया। किसी भी शासक द्वारा दूसरे शासक को कर दिया जाना यह सूचित करने वाला होता है कि कर-दाता राज्य दूसरे राज्य के संरक्षण मे है। यह मानी बात है कि जो संरक्षण में रहता है वह पूर्ण स्वतंत्र

नहीं रहता। मराठों से प्राप्त सहायता की क़ीमत दरियाव देव को चुकानी पड़ी। प्रतिवर्ष चार हजार रुपये टाकोली के रुप में देना तय हुआ था मगर वस्तर राजा की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह नियमित रुप से कर पटा सके। राज्य के लिए यह अतिरिक्त खर्च था जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती थी। दरियाव देव के शासन काल में मराठों का हस्तक्षेप कम रहा। नियमित कर न मिलने पर भी वे वस्तर राजा को बाध्य न कर सके। दरियाव देव की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र महिपाल देव, (जिसे कुछ स्थलों पर मयपाल देव भी लिखा गया है,) के काल में मराठों का हस्तक्षेप अधिक होने लगा। महिपाल देव को उत्तराधिकार के साथ क़ोटपाड़-विवाद व मराठा-विवाद प्राप्त हुआ। दोनों मामले जटिल थे और दोनों का शीघ्र निदान वस्तर के हित में था।

सन् १८०० ई० में राजा दरियाव देव की मृत्यु हुई। उसका पुत्र महिपाल देव राजगद्दी पर बैठा। वह अल्प-वयस्क था, उसकी अवस्था केवल नौ वर्ष की थी। अल्प-वयस्क शासक होने पर मंत्री के पद का महत्व बहुत बढ़ जाता है। महिपाल देव के चाचा उमराव सिंह इस पद पर गिद्ध-दृष्टि रखे हुए थे। महिपाल देव उन्हें यह पद नहीं देना चाहते थे। उमराव सिंह इससे असंतुष्ट हुए और सीधी ऊंगली से घी न निकलते देख टेढ़ी ऊंगली का प्रयोग किया। प्रेय की प्राप्ति के लिए श्रेयस्कर मार्ग ही अपनाना आवश्यक नहीं है, इस सिद्धांत पर चलते हुए, अपने पूर्वज के बतलाए मार्ग को उमराव सिंह ने अपनाया। मराठे वस्तर में हस्तक्षेप के लिए हरदम तैयार रहते थे। उमराव सिंह ने उन्हें ही अपना सहायक बनाया। मराठों के पास वस्तर पर आक्रमण का कारण तैयार था। वस्तर शासक नियमित रुप से टाकोली नहीं पटा रहे थे। भोंसला अधिकारी रामचन्द्र बाघ के नेतृत्व में एक मराठा सेना अकस्मात वस्तर पर आक्रमण करती है। महिपाल देव अनुभव शून्य तो थे ही अपने से बड़ी शक्ति के आक्रमण ने उसे राजधानी छोड़कर भागने के लिए विवश किया। समीपवर्ती घने वन में वे जा छिपे। मराठा अधिकारी रामचन्द्र बाघ ने जयपुर राजा को विवादास्पद भाग कोटपाड़, छिछुंदा के क्षेत्र तो प्रदान किए ही रायगढ़ पोड़ागढ़, उमरकोट भी इस शर्त पर दे डाले कि जयपुर राजा, नागपुर की सरकार को वस्तर राजा से टाकोली वसूल करने में मदद पहुंचावेगा तथा वस्तर राजा उमराव

सिंह के पक्ष का समर्थन करते रहेगा। इस संधि से स्पष्ट होता है कि मराठों ने उमराव सिंह को बस्तर की राजगद्दी पर प्रतिष्ठित कर दिया था। उमराव सिंह गद्दी पर बने रहें इसीलिए जयपुर राजा को उमराव सिंह के पक्ष का समर्थन करने को कहा गया था।

मराठों की सहायता से उमराव सिंह बस्तर की राजगद्दी पर प्रतिष्ठित तो हो गए मगर अधिक दिनों तक राजगद्दी पर अधिकार स्थापित नहीं कर पाए। कांकेर, बस्तर का सीमावर्ती राज्य था बस्तर में घटित घटनाओं का उस पर भी प्रभाव पड़ता था। काँकेर रियासत ने महिपाल देव व उमराव सिंह के टकराहट में राजा महिपाल देव का साथ दिया। इसका दुष्परिणाम उसे भोगना पड़ा। मराठे कांकेर राजा से अप्रसन्न हो गए और कुछ काल के लिए कांकेर राजा को रियासत के अधिकार से वंचित होना पड़ा।

महिपाल देव बस्तर की राजगद्दी पर पुनः प्रतिष्ठित होते हैं। कोटपाड़ विवाद अब और विस्तार पा चुका था क्योंकि मराठों ने काफी बड़ा भाग जयपुर राजा को सौंप दिया था। छिने गए क्षेत्रों की पुनः प्राप्ति के लिए राजा महिपाल देव लगातार ।ब्रटिश भारत की सरकार व जयपुर राजा को आवेदन करते रहे। इन आवेदनों का कोई फल प्राप्त नहीं हुआ। वास्तव में कोटपाड़ परगना उपजाऊ भू-भाग था जिस पर अधिकार रखना बस्तर शासक के लिए अति-आवश्यक था।

नागपुर के भोंसला शासक अप्पा साहब को पदच्युत कर अंग्रेजों ने एक अल्प-वयस्क बालक को रघोजी तृतीय के नाम से नागपुर की गद्दी पर बैठाया (द पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ छत्तीसगढ़, पृ० १९२) अंग्रेजों के सुपरविजन में एक कौंसिल भोंसला राज्य का शासन संचालित करने लगी। छत्तीसगढ़ भी भोंसला शासन क्षेत्र में था। जून १८१८ ई० में एक अंग्रेज अधिकारी मि० एगन्यू ने छत्तीसगढ़ सूब के सुप्रिन्टेन्डेन्ट का पद-भार ग्रहण किया। मि० एगन्यू ने देशी राजाओं के साथ मराठों के सम्बंध को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से अनेक संधियाँ की। इस उद्देश्य की परिपूर्ति के लिए उसने देशी राजाओं से भेट का सिलसिला प्रारम्भ किया। बस्तर के राजा महिपाल देव से राजू नामक स्थान पर एगन्यू की भेंट हुई। राजा, एगन्यू के साथ धमतरी में दस दिनों तक रहे। मि० एगन्यू ने राजा महिपाल देव के बारे में लिखा— राजा तीस वर्षीय,

प्रभावशाली, स्पष्ट, सभ्य-स्वभाव के व्यक्ति दिखाई पड़े। राजा अपने और नागपुर प्रशासन के विद्यमान सम्बंधों से संतुष्ट थे। उनकी एकमात्र शिकायत कोटपाड़ परगने के सम्बंध में थी। विदाई के समय महिपाल देव ने एगन्यू को भेंट स्वरुप हाथी, घोड़े, पिस्तौल तथा कपड़े दिए। मराठा शासन की मित्रता के प्रति कृतज्ञता भी ज्ञापित किया।

भोंसलों का शासन अपने हाथों में लेने के पश्चात् अंग्रेजों ने यह अति आवश्यक समझा कि देशीं राज्यों का मराठों के साथ जो सम्बंध है उसे परिभाषित किया जाय। संधि की शर्तें लिखित रुप में स्वीकार करायी जाए। वस्तर के शासक ने नई व्यवस्था के प्रति अनुकुल रुख अपनाया। छत्तीसगढ़ के विद्रोही गैमुट भारती को वस्तर राजा ने पकड़वाया और अंग्रेजों के सुपुर्द किया (रिचर्ड जेनकिन्स रिपोर्ट, पृ० १७५) ३० मार्च १८१९ ई० को नागपुर और वस्तर राजा के मध्य एक इकरारनामा हुआ। इसकी मुख्य शर्तें थी—

(१) वस्तर राजा महिपाल देव ने नागपुर राज्य के आश्रित होने की बात को स्वीकार किया। इस समझौते से वस्तर राजा और उसके उत्तराधिकारी आवद्ध रहेंगे। नागपुर राजा के प्रति विश्वास-पात्र बने रहने और उसके आदेशों को मानना स्वीकार किया।

(२) बदले में नागपुर राजा ने वस्तर राजा को सुरक्षा प्रदान करने का आश्वासन दिया।

(३) यह तय हुआ कि वस्तर राजा और उसके उत्तराधिकारी नागपुर राज्य के सहयोगी के रुप में कार्य करेंगे।

(४) नागपुर राजा की स्वीकृति के विना वस्तर राजा और उसके उत्तराधिकारी अन्य राज्यों से स्वतंत्रता-पूर्वक व्यवहार नहीं करेंगे और अपने सभी विवादों को नागपुर राजा के समक्ष विचार एवं निर्णय के लिए प्रस्तुत करेंगे।

(५) अपने क्षेत्र में आने-जाने वाले व्यापारियों को मुक्त प्रवेश और सुरक्षा प्रदान करना, वस्तर राजा ने स्वीकार किया।

(६) नागपुर राजा के किसी शत्रु या अपराधी को वस्तर राजा और उसके उत्तराधिकारी शरण नहीं देंगे। ऐसे व्यक्तियों को गिरफ्तार कर नागपुर राजा के सुपुर्द कर दिया जावेगा।

(७) महिपाल देव और उसके उत्तराधिकारी तीन किश्तों में पाँच

हजार नागपुरी रुपये नागपुर राजा को टाकोली के रुप में देंगे। वे अपना एक वकील छत्तीसगढ़ में रखेंगे। जब तक कोटपाड़ परगना बस्तर से अलग रहेगा, टाकोली में एक हजार की छूट रहेगी।

(८) बस्तर राजा पर टाकोली का जो एरियर्स बचा था उसे इस शर्त पर माफ कर दिया कि १२२८ फसली वर्ष (= १८१८ ई०) से टाकोली नियमित रुप से अदा किया जावेगा।

इस इकरारनामा पर नागपुर राजा की ओर से मि० एगन्यू ने तथा बस्तर राजा की ओर से नारायण व कासीर सिंह दाउ ने हस्ताक्षर किए (ए कलेक्शन ऑफ ट्रिटिस, इंगेजमेंट्स एन्ड सनद्स रिलेटिंग टू इंडिया एन्ड नेवरिंग कन्ट्रीस भाग— २ पृ० ५३१—३२)

मि० एगन्यू ने कोटपाड़ विवाद के सम्बंध में बस्तर राजा के पक्ष को नागपुर स्थित ब्रिटिश रेजिडेन्ट के माध्यम से उच्च अधिकारियों को प्रेषित किया। मि० एगन्यू ने स्पष्ट लिखा कि यदि विवाद को शीघ्र सुलझाया नहीं गया तो दोनों राजाओं के मध्य युद्ध अवश्यम्भावी है और युद्ध–जनित स्थिति का पूरा–पूरा लाभ चोर व लुटेरों को मिलेगा। अंततोगत्वा इसका बुरा प्रभाव आस-पास के जंगली राज्यों पर भी पड़ेगा। रेज़िडेन्ट ने एगन्यू को लिखा कि शांति व व्यवस्था बनी रहे इसका ध्यान रखा जाय। गवर्नर जनरल ही इस विवाद को सुलझा सकते हैं।

१८२५ से १८२८ ई० तक छत्तीसगढ़ के अधीक्षक पद पर मि० सैन्डीस रहे। बस्तर राजा महिपाल देव ने उनसे भी कोटपाड़ सम्बंधी अपना दुखड़ा रोया। राजा ने लिखा— 'मैं जयपुर राजा के सामने कमजोर हूँ। बस्तर और जयपुर राज्यों की सीमाओं पर नित्य प्रति जानवरों की लूट, मारपीट तथा बन्दी बनाए जाने की घटनाएँ होती रहती हैं। मैं इसके खिलाफ आपकी अनुमति के बिना कुछ भी कार्यवाही नहीं कर सकता हूँ परन्तु अब मेरा धैर्य समाप्त हो रहा है।"

मि० सैन्डिस ने भी अपने पूर्ववर्ती मि० एगन्यू की भांति नागपुर स्थित ब्रिटिश रेज़िडेन्ट को अपनी टिप्पणी के साथ बस्तर राजा का पत्र प्रेषित किया। रेजिडेन्ट ने गवर्नर जनरल को लिखा। गवर्नर जनरल से जवाब आया कि मामले पर विचार हो रहा है, अंतिम निर्णय कुछ समय पश्चात् भेजा जावेगा। गवर्नर जनरल ने यह भी निर्देश दिया कि

सम्बंधित राजाओं को यह सुस्पष्ट चेतावनी दे दी जाय कि वे आक्रमणात्मक कार्यवाही कदापि न करें अन्यथा विवादास्पद क्षेत्र पर से दोनों राज्यों का अधिकार समाप्त कर दिया जावेगा। चेतावनी कड़ी थी, दोनों राज्य इससे सहमे।

कोटपाड़ सम्बंधी विवाद लम्बा खींचता चला गया। राजा महिपाल देव आजीवन इसके निपटारे के लिए असफल प्रयास करते रहे। महिपाल देव के सम्मुख जयपुर राजा ने बस्तर के पूर्ववर्ती राजा दरियाव देव द्वारा लिए गए २८ हजार रुपयों के ऋण का मामला रखा और इस राशि के ब्याज सहित भुगतान पर जोर दिया। लगभग ५६ हजार रुपयों का भुगतान राजा महिपाल देव के लिए लगभग असंभव था। ऋण के भुगतान के रुप में सलौनीगढ़, आँवरी, भैंसाबेड़ा के इलाके महिपाल देव ने जयपुर राजा को हस्तांतरित किए (छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेट्स पृ० ३८) इस हस्तांतरण को स्थायी नहीं बतलाते हुए राजा महिपाल देव ने शर्त रखी कि जब कभी रकम पट जावे तो ये इलाके वापस लिए जा सकेंगे (लोहंडीगुड़ा तरंगिनी, पृ० ५७)

— राजा भोपाल देव —

१८३९ ई० में राजा महिपाल देव की मृत्यु हुई। उनका ज्येष्ठ पुत्र भोपाल देव बस्तर की राजगद्दी पर बैठे। राजा महिपाल देव की दो रानियाँ थी। बड़ी रानी पदमकुँवर से भोपाल देव उत्पन्न हुए, दूसरी रानी हरकुँवर थी। इस रानी से दलगंजन सिंह पैदा हुए। यही दलगंजन सिंह राज-परिवार के चर्चित व्यक्तित्व थे। राजा भोपाल देव और उसके पश्चात् राजा बने भैरमदेव दोनों दलगंजन सिंह के दबंग व्यक्तित्व से सहमे रहते थे। दलगंजन सिंह और भोपाल देव सौतेले भाई थे (दीवान पंडा बैजनाथ द्वारा १९०६ ई० में भेजी गई राजवंशावली)

राजा भोपाल देव का शासन-काल प्रारंभ ही हुआ था कि नागपुर के भोंसले शासक को यह शिकायत मिली कि बस्तर में दन्तेश्वरी देवी को नरबलि दी जाती है। शिकायत गंभीर थी, नागपुर राजा ने बस्तर के राजा को ही स्पष्टीकरण देने के लिए नागपुर बुलवाया। भोपाल देव आँख की बीमारी से पीड़ित थे अतः स्वयं नागपुर न जा सके। अपने स्थान पर उन्होंने अपने भाई दलगंजन सिंह को दीवान जगबन्धु के साथ १८४२ ई० में नागपुर भेजा। ६ माह तक नागपुर में रहकर दलगंजन सिंह

एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के रुप में चर्चित हुए। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से न केवल भोंसला शासक को वरन् ब्रिटिश रेजिडेन्ट को भी प्रभावित किया। बस्तर राजा को यह सलाह दी गई कि दलगंजन सिंह को बस्तर के व्यवस्थापन का कार्य सौंपा जाय (लेफ्टि० कर्नल इलियट की रिपोर्ट, पृ० १४) नागपुर राजा की सलाह एक प्रकार से आदेश ही था, भोपाल देव ने इसे स्वीकार किया। सन् १८४५ ई० में राजा भोपाल देव और लाल दलगंजन सिंह के मध्य एक उल्लेखनीय समझौता हुआ। इसके द्वारा भोपाल देव ने दलगंजन सिंह को महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान किए। रियासत के शासन का लगभग पूरा भार दलगंजन सिंह को सौंपा गया। राजा ने अपने पास जो अधिकार सुरक्षित रखे वे थे – किसी को भूमि, गाँव या ताल्लुका प्रदान करना, आदर-सूचक उपाधियों का वितरण करना, फौजदारी मामलों पर सुनवाई कर अपराधी को सजा देना। लाल दलगंजन सिंह को जो अधिकार मिले, इससे उनके हौसले बुलंद हुए। राजमद ने उन्हें अंधा बना दिया, कुछ ऐसे व्यवहार उन्होंने किए जिनके परिणाम स्वरुप राजा के कान चौकन्ने हुए। समय रहते लाल दलगंजन सिंह के सातवें आसमान पर चढ़े पारे को जमीन पर उतारने के उद्देश्य से राजा भोपाल देव ने उनकी शिकायत रायपुर के अधिकारी को की। रायपुर के अधिकारी सक्रिय हुए। लाल दलगंजन सिंह की पेशी रायपुर में हुई। जान-बूझकर लाल को रियासत से बाहर ६ माह तक रखा गया (लेफ्टि० कर्नल इलियट रिपोर्ट, पृ० १५) राजा भोपाल देव ने लाल दलगंजन सिंह को निर्वाह के लिए अठारह गढ़ प्रदान किए थे। इन अठारह गढ़ों के कारण भविष्य में मतभेद व मनभेद की स्थिति निर्मित हुई।

सन् १८१८ ई० से नियमित रुप से टाकोली पटाना तय हुआ था मगर बस्तर राजा नियमित रुप से इसे पटा नहीं सके। अतः मराठों ने जोर डाला, बाध्य होकर बस्तर राजा को सिहावा परगना मराठों को सौंपना पड़ा (ट्रिटिस, इंगेजमेंट एन्ड सनद्स रिलेटिंग टू इंडिया एंड नेबरिंग कन्ट्रीस, ग्रंथ २ पृ० ४८६)

लाल दलगंजन सिंह, राजा भोपाल देव के लिए एक समस्या रहे। ६ माह तक रायपुर में रहने के पश्चात् लाल वापस बस्तर लौटे। राजा से बन्धुतापूर्ण सम्बंध स्थापित न हो सका। पड़ोसी राज्य जयपुर से सहायता प्राप्ति के उद्देश्य से दलगंजन सिंह रायपुर की ओर बढ़े। राजा

ने उन्हें समझाने बुझाने के उद्देश्य से अपने दीवान जगवन्धु और जगन्नाथ बहिदार को भेजा। लाल दलगंजन सिंह ने इनके साथ दुर्व्यवहार किया। दोनों को पकड़वाया और बेड़ियाँ पहनवायी, गले तक जमीन में गाड़ दिया (इलियट रिपोर्ट, पैरा १२) किसी प्रकार इस नारकीय यातना से छूटकर दोनों सम्मानित व्यक्ति जगदलपुर लौटे और नागपुर के भोंसला शासक को पूरा प्रकरण भेजा। नागपुर राजा ने सैनिक भेजकर लाल दलगंजन सिंह को पकड़ बुलाया और मामले की गंभीरता को देखते हुए अठारह माह के कारावास का दंड दिया।

लाल दलगंजन सिंह जिन दिनों नागपुर कारावास में थे उसी मध्य बस्तर के राजा भोपालदेव की आकस्मिक रुप से मृत्यु हो गई। वस्तर राजपरिवार में कोई दूसरा बुजुर्ग नहीं था। भोपालदेव के पुत्र भैरमदेव अल्प-वयस्क थे, अवस्था लगभग तेरह वर्ष की थी। राजकाज सुचारु रुप से संचालित करने के लिए लाल की आवश्यकता महसूस हुई। एक वकील के माध्यम से नागपुर राजा के पास लाल की रिहाई हेतु आवेदन किया गया। नागपुर राजा ने अपने रायपुर स्थित कोटवाल से पूरी स्थिति की जानकारी प्राप्त की। नागपुर में ही दलगंजन सिंह को एक समझौते पर हस्ताक्षर करवाया गया। इस समझौते के अनुसार वस्तर के, राजा अल्प-वयस्क भैरमदेव को ही माना गया। लाल अपने अठारह गढ़ों से संतुष्ट रहेंगे उससे अधिक पर नही फैलावेंगे। वस्तर में मंत्री के रुप में दलगंजन सिंह कार्य करेंगे यह स्पष्ट रुप से निर्धारित हुआ (इलियट रिपोर्ट, पैरा १२) २८ वर्ष की अवस्था में लाल एक वार पुनः वस्तर के मंत्री का पदभार ग्रहण करते हैं। १८५४ से १८६२ ई० तक अर्थात मृत्यु-पर्यन्त लाल इस पद पर बने रहे।

अध्याय—पाँच

अंग्रेजी सर्वोच्यता में काकतीय शासक

बस्तर के काकतीय शासक जब तक स्वतंत्र रहे तब तक रहे मगर एक बार जहाँ पराश्रितता में आए फिर तो पराश्रित ही रहे। मराठा पराश्रितता का दौर जो १७८० ई. से प्रारंभ हुआ था वह सन् १८५५ई. के प्रारंभ तक चलता रहा। १८५५ ई० से बस्तर में अंग्रेजी सर्वोच्यता के युग का प्रारंभ होता है। यह युग १९४७ ई० तक चलता रहा। राजा भैरमदेव पहले काकतीय शासक थे जो नई व्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं। बस्तर भोंसला साम्राज्य का करद राज्य था। जब तक भोंसला साम्राज्य रहा यह उसका अंग रहा। भोंसला शासक रघुजी तृतीय की मृत्यु ११ दिसम्बर १८५३ ई० में हुई। राजा की चार रानियाँ थी मगर वंश चलाने वाला एक भी पुत्र नहीं था। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी महान साम्राज्यवादी था। देशी रियासतों को ब्रिटिश भारत में सम्मिलित किए जाने के किसी भी अवसर को वह हाथ से नहीं जाने देता था इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने जो अनेक साधन अपनाए उनमें से एक था 'गोदनिषेद का सिद्धांत'। वैध उत्तराधिकारी के अभाव में देशी राज्य गोद ले सकते थे मगर डलहौजी ने इसकी प्रक्रिया इतनी जटिल कर दी कि अपवाद स्वरुप ही किसी देशी राजा को गोद लेने दिया जाता था।

रघोजी तृतीय का भोंसला साम्राज्य. ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित करने का निश्चिय डलहौजी ने कर लिया था। १३ मार्च १८५४ ई० को औपचारिक रुप से भोंसला साम्राज्य के ब्रिटिश साम्राज्य में संयोजन की घोषणा की गई। इस घोषणा के फलस्वरुप छत्तीसगढ़ ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में आया। १ फरवरी १८५५ ई० को छत्तीसगढ़ के डिप्टी कमिश्नर के पद पर चार्ल्स इलियट प्रतिष्ठित हुए। ३१ जनवरी १८५५ ई० तक देशी अधिकारियों के द्वारा क्षेत्र का शासन संचालित होता रहा, ऐसी स्थिति में बस्तर में ब्रिटिश सर्वोच्यता के युग का प्रारंभ १ फरवरी १८५५ ई० से मानना समीचीन होगा।

राजा भोपाल देव की मृत्यु सन् १८५३ ई० में हुई (ट्रिटिस, ईंगेजमेंट एंड सनद्स खंड २ पृ० ४८६) उनका पुत्र भैरमदेव उत्तराधिकारी हुआ। कुछ पुस्तकों में इन्हें भैरव देव भी लिखा गया है। भैरव देव

अल्प-वयस्क थे। अवस्था केवल १३ वर्ष की थी, ऐसी स्थिति में बस्तर रियासत का प्रशासन संभालने के लिए लाल दलगंजन सिंह को बस्तर भेजने हेतु आवेदन किया गया। नागपुर शासक ने अपील पर सहानुभूति पूर्वक विचार किया और लाल को वापस बस्तर भेजा।

राजा भैरम देव का शासन काल अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय है। इनके शासन काल की मुख्य घटनाऐं थी – बस्तर का अंग्रेजी सर्वोच्यता में आना, १८५७-५८ का महाविद्रोह, इलियट व ग्लासफर्ड का बस्तर दौरा और रिपोर्ट तैयार करना, वायसराय लार्ड केनिंग द्वारा एडाप्सन सनद प्रदान किया जाना, राजा द्वारा एकनोलेजमेंट ऑफ फियल्टी प्रस्तुत करना, १८७६ ई० का बस्तर संघर्ष, नरबलि की शिकायत, बस्तर में प्राथमिक शिक्षा का प्रारंभ आदि।

मि० चार्ल्स इलियट ने छत्तीसगढ़ के डिप्टी कमिश्नर का पदभार संभालने के पश्चात् विभिन्न रियासतों का दौरा किया। इसी क्रम में वे बस्तर भी आए। बस्तर के सुदूरस्थ अंचलों तक वे गए। दन्तेवाड़ा पहुँचने वाले वे पहले यूरोपीय थे। बस्तर रियासत के बारे में अपनी रिपोर्ट उन्होंने २७ मई १८५६ ई० को प्रस्तुत की। यह रिपोर्ट तत्कालीन बस्तर को समझने में बहुत सहायक है। एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अभिलेख के रुप में इसे मान्यता प्राप्त है। राजा भैरम देव से उनकी भेंट हुई। राजा की शिक्षा-दीक्षा के बारे में उनकी टिप्पणी प्रतिकूल है। इतने बड़े रियासत के राजा की बौद्धिक क्षमता का कम रहना उन्हें भाया नहीं। राजा भैरम देव रियासत से बाहर कभी भी नहीं गए, यह भी इलियट की निगाह में खलने वाली बात थी।

मि० इलियट की भेंट लाल दलगंजन सिंह से भी हुई। इलियट ने लिखा है— "दलगंजन की इस समय आयु तीस वर्ष या इससे अधिक है किन्तु उसकी बौद्धिक या शारीरिक क्षमता में कोई कमी नही है बल्कि अतिशय दबंग और अहमन्य व्यक्तित्व होने के कारण लोग उस तक पहुँचने में और उसकी सहायता और सलाह लेने में सहमते है। वह अपने कामों में उतावला, स्वभाव से चिड़चिड़ा और अपनी आदतों में आलसी व अकर्मण्य है। मेरे निजी अनुभव के अनुसार उसका यही सार्वभौम चरित्र है और सिवाय उसकी अपनी इच्छा के, कि वह ऊपर से प्राप्त निर्देशों के अनुसार रियासत के हितों का संवर्धन और नियंत्रण

करेगा। उसने यह भी कहा कि अपेक्षाकृत अल्पायु में ही वह घरेलू झगड़ों व विवादों में घिर गया इस कारण संभवतः अपना कार्य को सुचारु रुप से निष्पादित नहीं कर सका, मुझे उसके व्यक्तित्व में कोई भी विनम्रता और नमनीयता नहीं दिखायी दी कि जिसके आधार पर परिवीक्षात्मक तौर पर भी मैं उसके मामले की अनुशंसा कर सकता (चार्ल्स इलियट रिपोर्ट, पृ० सोलह)

लाल दलगंजन सिंह के बारे में इलियट के विचारों को जानने के पश्चात् सी० ग्लासफर्ड के राजा भैरम देव के बारे में वर्णन अपेक्षित है। सी० ग्लासफर्ड ने २९ सित० १८६२ ई० को अपनी जो रिपोर्ट तैयार की उसमें वर्णन है— "वर्तमान राजा भैरमदेव चौबीस वर्ष के नवयुवक हैं। वे अपने चाचा (दलगंजन सिंह) जो कि रियासत के दीवान भी हैं की उपस्थिति से अतिशय भयभीत है या नहीं मैं नहीं कह सकता किन्तु बौद्धिक व मानसिक क्षमता में निश्चित रुप से कमी है और मैं नहीं समझता कि वे इस योग्य हैं कि अपने बूते पर रियासत का काम-काज चला सकें। दूसरे तमाम मामलों में राजा को एक आदर्श नवयुवक राज प्रतिनिधि के रुप में प्रस्तुत किया जाता है। रियासत से बाहर की यात्रा बिल्कुल भी नहीं किया है और वे बिल्कुल ही अशिक्षित भी हैं। पिता की मृत्यु के समय अल्प-वयस्क होने के कारण उनकी शिक्षा-दीक्षा का भार उनके चाचा पर पड़ा और ऐसा लगता है कि चाचा ने उन्हें राज प्रमुख पद के अनुरुप शिक्षित करने की दिशा में कुछ भी नहीं किया। अपनी शिष्टाचार व बातचीत में वे फूहड़ हैं और हमेशा ही संकुचित प्रतीत होते हैं किन्तु जैसा कि मैंने पहले कहा यह सब अपने चाचा के प्रति अतिशय भय और उस सतत् उपेक्षा का परिणाम है जिसमें वे पले-बढ़े हैं (सी० ग्लासफर्ड रिपोर्ट, पृ० ७९)

जहाँ तक लाल दलगंजन सिंह का सवाल है वे अपने भाई राजा भोपाल देव पर ही भारी पड़ते थे, भतीज भैरम देव पर तो और भारी पड़ते हो। इतिहास गवाह है कि संरक्षक वक्त की माँग होता है, समय का तकाजा होता है मगर बाद में वही संरक्षक एक भार प्रतीत होने लगता है, जिसे वहन करना मजबूरी होता है। भैरम देव ने भी अपने संरक्षक दलगंजन सिंह को सहा। मृत्युपर्यन्त लाल बस्तर के सर्व-सर्वा रहे। सन् १८६२ ई० में उनकी मृत्यु हुयी। सी० ग्लासफर्ड की रिपोर्ट २९ सित०

१८६२ ई० की है, जिसमें दलगंजन सिंह को जीवित बतलाया गया हैं। इस तिथि के पश्चात् ही उनकी मृत्यु हुई। लाल की मृत्यु के उपरांत ही राजा भैरम देव उस भय से मुक्त हो सके जो उन पर हमेशा छाया रहता था।

राजा भैरम देव के नामकरण के सम्बंध में वर्णण मिलता है। राजा राजा भोपाल देव पुत्र की याचना करने उड़ीसा स्थित कोड़ागढ़ को देवी भैरम देवी के मंदिर पहुँचे। भैरम देव के जन्म होने पर देवी के प्रति आभार प्रदर्शन हेतु वे पुनः कोड़ागढ़ गए। रास्ते में जहाँ-जहाँ पड़ाव पड़ा वहाँ-वहाँ तालाव खुदवाए। ऐसा ही एक तालाव जैतगिरि में खुदवाया गया। आज भी वह तालाव भैरम–सागर के नाम से जाना जाता है। देवी भैरम के आशीर्वाद से प्राप्त पुत्र का नाम भैरम देव रखा गया।

राजा भैरम देव के शासन काल में भारत में १८५७–५८ में महा-विद्रोह हुआ। इस अशांति के दौर में बस्तर में शांति रही मगर सीमा-वर्ती अरपल्ली (चांदा जिला) के जमींदार येन्कुट राव ने और बापूराव ने विद्रोह कर, अपने इलाके को तो अशांत किया ही, बस्तर राजा भैरम देव के लिए मुसीबत पैदा कर दी। अहेरी के जमीन्दारिन ने ११ मार्च १८५९ ई० को एक पत्र चांदा के डिप्टी कमिश्नर को लिखा। इस पत्र में उसने अपने गुप्तचरों से प्राप्त यह सूचना ब्रिटिश अधिकारियों को दी कि विद्रोही जमींदार येन्कुट राव को बस्तर राजा का समर्थन प्राप्त है और येन्कुट राव बस्तर राजमहल में निवास कर रहा है। जमी-दारिन ने यह आरोप भी लगाया कि बस्तर राजा ने बुन्कुट राव नामक व्यक्ति को नजरबन्द कर रखा है। बुन्कुट राव ने विद्रोही बापूराव को पकड़ने में सक्रिय भूमिका निभाई थी। बस्तर राजा के येन्कुट राव से मैत्री के समाचार भी फैलते रहे। बस्तर राजा अस्त्र-शस्त्र एकत्र कर रहा है, उसके सैनिक लड़ने की मुद्रा में एकत्र हो रहे हैं। ऐसी सूचना मिलने पर रायपुर से ब्रिटिश अधिकारियों ने राजा से स्पष्टीकरण मांगा। बस्तर राजा ने उत्तर दिया कि उसकी सैनिक तैयारी जयपुर राजा के संभावित आक्रमण से रक्षा के लिए है। भैरम देव को स्पष्ट निर्देश दिए गए कि वे येन्कुट राव से किसी प्रकार का संपर्क न रखे और उसके बस्तर रियासत में प्रवेश करने पर गिरफ्तार कर लें।

अहेरी और भोपाल पटनम के जमींदार परिवारों में रिश्तेदारी थी। अहेरी जमींदार ने येन्कुट राव को गिरफ्तार करवाने की कोशिश की थी अतः यह आशंका थी कि येन्कुट राव अहेरी और भोपाल पटनम पर आक्रमण करेगा।

इस प्रकार से महाविद्रोह के काल में बस्तर भले ही शांत रहा हो, यहाँ के राजा भैरम देव को शांति नहीं थी। उसके विरुद्ध लगातार शिकायतें की जाती रही और राजा पर कड़ी निगाह रखी गई।

१८५७–५८ के महाविद्रोह ने ब्रिटिश भारत की सरकार को देशी राज्यों के प्रति अपनी नीति पर पुनर्विचार के लिए बाध्य किया। देशी राजाओं को अपने सिंहासन के बारे में आश्वस्त रखने के उद्देश्य से गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग ने देशी राजाओं को 'एडाप्सन सनद' प्रदान करना प्रारंभ किया। ऐसा ही एक सनद राजा भैरम देव को ११ मार्च १८६२ ई० में प्रदान किया गया। सनद का भाषा अनुवाद इस प्रकार है—

"तब महती साम्राज्ञी के भारत के कतिपय राजकुमारों एवँ अपने-अपने क्षेत्र पर शासन करने वाले राजप्रमुखों को सरकारों को स्थायित्व प्रदान करने तथा उनके राजवंशों के प्रतिनिधित्व को गरिमा एवँ नैरंतर्य प्रदान करने की इच्छुक होने के कारण यह सनद आपको तब महती की इच्छा को पूरा करते हुए प्रदान की जाती है। कि स्वाभाविक उत्तराधिकारी के अभाव में ब्रिटिश सरकार आपके अथवा आपकी रियासत के भविष्य में भी होने वाले राजप्रमुखों द्वारा हिन्दू विधि एवँ आपकी जातीय परम्परा के अनुसार गोद लिए गए किसी भी उत्तराधिकारी को मान्यता एवँ सम्पुष्टि प्रदान करेगी।

(२) आश्वस्त रहिए कि इस प्रकार आपके साथ किए गए निबंध को किसी भी प्रकार तब तक उल्लंघित नहीं किया जा सकता जब तक आपका वंश ब्रिटिश राजमुकुट के प्रति राजभक्त और ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त अनुदानों एवँ अनुबंधों के प्रति निष्ठावान बना रहेगा।" (ट्रिटिश, इंगेजमेंट एंड सनद्स रिलेटिंग टू इंडिया एंड नेबरिंग कन्ट्रिस-खंड २ – पृ० ५४५)

राजा भैरमदेव द्वारा प्रस्तुत निष्ठा-पत्र

राजा भैरमदेव को एडाप्सन सनद प्राप्त हुआ। देशी राजाओं से 'एकनालेजमेंट ऑफ फियल्टी' प्राप्त करने का सिलसिला प्रारंभ किया

गया। बस्तर राजा ने १८ दिस० १८७० ई० तक ऐसा निष्ठापत्र प्रस्तुत नहीं किया था। राजा को वनों के आरक्षण व ट्रिब्युट के सम्बंध में कुछ आपत्ति थी (ट्रिटिस, इंगेजमेंट्स एन्ड सनद्स, खंड २ पृ०४८३) राजा भैरमदेव ने १९ दिस० १८७० ई० को निष्ठापत्र (एकनोलेजमेंट ऑफ फियल्टी) प्रस्तुत किया। निष्ठा स्वीकृति इस प्रकार है—

मध्य प्रांत के मुख्य आयुक्त के प्रशासन के तहत मैं एक राजप्रमुख हूं। ब्रिटिश शासन के द्वारा अब मुझे एक सामंत के रुप में मान्यता मिल चुकी है। मेरी यह मान्यता मुख्य आयुक्त या ऐसे किसी भी अधिकारी जिसे मुख्य आयुक्त निर्देशित करे, के राजनैतिक नियंत्रण के आधीन है। अपने क्षेत्र के अंतर्गत मैं सभी अधिकारों का सम्मान व पालन करुँगा। मैं अपने किसानों की समृद्धि, सख्त न्याय प्रशासन और अपराधों के प्रभावी दमन पर ध्यान दूंगा। जब कोई अपराधी मेरे सम्मुख मृत्यु दंड या सात वर्ष से अधिक बंदीकरण अर्जित करेगा तो उसे अंतिम रूप से दंडित करने से पूर्व मैं मामला उस ब्रिटिश अधिकारी के पास भेजूंगा जिसे मुख्य आयुक्त नियुक्त करेगा।

मेरे राज्य में अपराध करने वाला कोई व्यक्ति भागकर यदि ब्रिटिश या अन्य क्षेत्र में चला जावेगा, तो मैं इस मामले को ब्रिटिश अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करुँगा ताकि वे अपराधी को मुझे सौंप सके। यदि ब्रिटिश क्षेत्र में अपराध करने वाले लोग या ब्रिटिश क्षेत्र के अपराधी मेरे क्षेत्र में शरण लेते हैं तो उन्हें ब्रिटिश शासन के अधिकारियों द्वारा खोजा जावेगा और ऐसे भगोड़ों को पकड़ने और उन्हें ब्रिटिश शासन को सौंपने में मैं हर संभव सहायता दूंगा।

ब्रिटिश कोषागार को मैं तीन हजार छप्पन रु० वार्षिक ट्रिब्युट अदा करुँगा तथा जब भी इस ट्रिब्युट का संशोधन विचाराधीन होगा मैं ट्रिब्युट निर्धारण में सहायता दूंगा। ब्रिटिश शासन द्वारा जो भी ट्रिब्युट निर्धारित होगा उसे मैं नियमित रुप से अदा करुँगा। मैं अथवा मेरे उत्तराधिकारी, मेरी भू-सीमा में कोई भी परिवहन-शुल्क न लेने के लिए वचन बद्ध हैं।

अपने प्रजा-जनों को मैं ऐसी व्यवस्था देने के लिए वचन-बद्ध हूं कि उनके पास मेरे अन्याय की शिकायत करने का कोई कारण न रहे फिर भी मुझे वरीयता देकर मेरे विरुद्ध की गई कोई शिकायत पर

ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा मेरे ध्यान में लाई जाती है, तो मैं उसे न्याय संगति से निपटाऊँगा। जब भी मुख्य आयुक्त अथवा उसके अधिकारी मुझे निर्देश या सलाह देंगे मैं उन निर्देशों का पालन करने और सलाह को मानने के लिए वचन बद्ध हूँ। मैं और मेरी प्रजा मुख्य आयुक्त द्वारा निर्धारित वन अधिनियमों का पालन करेगी।

यदि कभी ऐसा हो कि मेरे अथवा मेरे उत्तराधिकारी के दुराचरण के फलस्वरुप मेरे राज्य में दुर्व्यवस्था व दमन फैल जावे तो मैं या मेरा उत्तराधिकारी अपने प्रशासनिक अधिकारों के निलंबन अथवा जब्ती-करण के पात्र होंगे।

संबलपुर स्थित डिप्टी कमिश्नर के कोर्ट अथवा मुख्य आयुक्त द्वारा निर्देशित किसी भी कोर्ट में अपना एक वकील स्थायी रुप से रखने के लिए वचन बद्ध हूँ।

उपरोक्त निष्ठा-पत्र काफी महत्वपूर्ण है। पहली बार बस्तर राजा इस प्रकार के किसी लिखित निष्ठा पत्र देने के लिए विवश हुए। इस पत्र में स्वयं भैरमदेव तो वचन-बद्ध हुए ही अपने उत्तराधिकारियों की ओर से भी निष्ठा पत्र प्रस्तुत किया। कूटनीति में माहिर अंग्रेजों ने बस्तर राजा से ऐसी बात स्वीकार करायी जिसने राजसिंहासन के पायों को कमजोर बना दिया। दुर्व्यवस्था और दमन को आधार बनाकर बस्तर के राजा को पदच्युत किया जा सकेगा – ऐसी व्यवस्था की गई। भारतीय इतिहास ऐसे अनेक दृष्टांतो से भरा पड़ा है जब दुर्व्यवस्था और दमन की झूठी शिकायतों को आधार बनाकर देशी रियासतों का विलीनिकरण ब्रिटिश भारत में किया गया। राज्याधिकार के निलंबन या हनन सम्बंधी धारा एक लटकती तलवार थी जो कभी भी बस्तर राजा के सिर पर अंग्रेजों द्वारा गिरायी जा सकती थी। उपरोक्त धारा को आधार बनाकर अनेक बार अंग्रेजों ने बस्तर राजा के अधिकारों को निलम्बित किया।

राजा भैरमदेव के शासन-काल की प्रमुख घटना सन् १८७६ ई० का संघर्ष है। इस संघर्ष की प्रमुख विशेषता आदिवासियों द्वारा कम से कम बलप्रयोग करना रहा। बिना शस्त्रों का प्रयोग किए केवल शस्त्रों का प्रदर्शन कर बस्तर के आदिवासियों ने प्रशासन से अपनी बात मनवा ली। इस संघर्ष का विशद वर्णन अगले अध्याय में किया गया है।

कोटपाड़ निर्णय—

राजा भैरमदेव ने डिप्टी-कमिश्नर सी० ग्लासफर्ड के माध्यम से, कोटपाड़ परगना सम्बंधी विवाद में अपना पक्ष प्रस्तुत किया। भारत सरकार के लिए यह एक कठिन कार्य था कि जिस भाग पर जयपुर राजा पिछले ८०-८५ वर्षो से अधिकार रखा है उसे बस्तर राजा को किस प्रकार लौटाया जाय। १८६३ ई० में यह निर्णय दिया गया कि कोटपाड़ परगना जयपुर राजा के ही पास बना रहेगा। जयपुर राजा इस एवज में तीन हजार रु० वार्षिक देगा (ट्रिट्रिश इंगेजमेंट एन्ड सनद्स रिलेंगिग टू इंडिया, खंड २ पृ० ४८६)

कालेन्द्र सिंह प्रकरण—

राजा भैरमदेव के काल का पूर्वार्ध जहाँ चाचा लाल दलगंजनसिंह से विवाद में बीता वही उत्तरार्ध चचेरे भाई लाल कालेन्द्रसिंह से विवाद में बीता। सन् १६८१ ई० में लाल कालेन्द्रसिंह बस्तर के दीवान बनाए गए। कुछ समय पश्चात् ही रानी से मतभेद की स्थिति में कालेन्द्रसिंह ने त्याग-पत्र दे दिया। सन् १८८३ ई० में कमिश्नर ने बस्तर का दौरा किया और सम्पूर्ण मामले पर विचार किया। कमिश्नर ने निर्णय दिया कि कालेन्द्र सिंह पुन दीवान का पदभार ग्रहण करे। उन्हें सहायता देने के लिए कुछ अधिकारी नियुक्त किए जायें। भारत सरकार ने इस व्यवस्था को स्वीकृति दी मगर १८८६ ई० में यह व्यवस्था भी टूट गई। लाल कालेन्द्र सिंह योग्य दीवान सिद्ध नहीं हुए। चीफ कमिश्नर ने एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर मि० कृष्णा राव को बस्तर के दीवान पद के लिए चुना। राजा भैरमदेव ने एक सनद प्रदान करते हुए राव को बस्तर के दीवान पद पर नियुक्त किया। २२ अप्रेल १८८६ ई० से उन्होंने कार्य आरम्भ किया। पोलिटिकल एजेंट फ्यूडेटरिस, रायपुर का पत्र क्र० १२८५/९४ दिनांक ९-८-१८८७ ई०) लाल कालेन्द्र सिंह नई व्यवस्था के मार्ग में रोड़े अटका रहे हैं यह शिकायत आए दिन अधिकारियों के द्वारा की जाती रही।

रियासत बस्तर के मामले पर अंग्रेजों की पकड़ दीवान के माध्यम से मजबूत होती गई। राजा के डब्बा खर्च (व्यक्तिगत खर्च) के बारे में स्पष्ट रुप से निर्देशित किया गया कि राजा एक हजार रु० दीवान के माध्यम से प्राप्त करेंगे। इससे अधिक राशि उन्हें खर्च नहीं करनी है

(कलेक्टरेट रिकार्ड रुम पोलिटिकल एजेंट, रायपुर का पत्र राजा भैरमदेव के नाम)

बस्तर प्रशासन पर नजर कमिश्नर व डिप्टी-कमिश्नर रखते थे। १८८२ ई० में छत्तीसगढ़ के सभी रियासत व जमींदारी पोलिटिकल एजेंट रायपुर व कमिश्नर छत्तीसगढ़ के अधीन किए गए। बस्तर भी अब रायपुर से नियंत्रित होने लगा (ट्रिटिश इंगेजमेंट एंड सनद्स खंड २ पृ० ४८३)

राजा भैरमदेव का शासन-काल बस्तर में शिक्षा के इतिहास में विशेष उल्लेखनीय है। उन्हीं के शासन-काल में सन् १८८६ ई० में पहली बार बस्तर में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। राजधानी जगदलपुर में हिन्दी, उड़िया व अरबी माध्यम के तीन स्कूल खोले गए।

ट्रिब्युट—

राजा भैरमदेव के काल में बस्तर का ट्रिब्युट ३.०५६ रु० वार्षिक निर्धारित किया गया। यह राशि बस्तर, भैरमदेव की मृत्यु तक देता रहा। उसकी मृत्यु के पश्चात् ही ट्रिब्युट का पुन निर्धारण हुआ। सन् १८६७ ई० में यह राशि निर्धारित हुई। २० वर्षों के पश्चात् इस पर पुनः विचार करना था। अन्य सामंतीय राज्यों की टाकोली १८८८ ई० में बढ़ाई गई मगर बस्तर की नहीं बढ़ाई गई। बस्तर का बढ़ा ट्रिब्युट १८८८ में लेना पोस्ट-फोन किया गया क्योंकि रियासत कर्ज में डूबा था और प्रशासनिक व्यवस्था को सुधारने के लिए उसे धन की आवश्यकता थी। २८ जनवरी १८९२ ई० को बस्तर का ट्रिब्युट १७ हजार रु० वार्षिक करने की स्वीकृति केन्द्रीय सरकार से प्राप्त हुई (अंडर सेक्रेटरी भारत सरकार का पत्र क्र० ४४८–१ दिनांक २८ जन० १८९२ ई०)

नरबलि प्रकरण—

राजा भैरमदेव के शासन-काल में किसी ने अंग्रेज सरकार को यह भी सूचित किया कि दन्तेवाड़ा स्थित दन्तेश्वरी मंदिर में नरबलि दी जाती है। (बस्तर-भूषण, पृ १४०) सन् १८८५–८६ में नर वध के बारे में अनुसंधान होता रहा। रायपुर से पुलिस सुप्रिन्टेन्डेन्ट तथा सैकड़ों पुलिस-जवानों ने आकर दन्तेवाड़ा के मंदिर के पास की जमीन खोदी। काफी हड्डियाँ निकली, लोगों को कबूल करने के लिए तंग किया, कुछ मनुष्यों ने कबूल भी कर लिया तथापि मंदिर का प्रमुख पुजारी अन्त

तक अस्वीकार करता रहा (वस्तर-भूषण, पृ० १४३) निष्पक्ष जाँच के लिए राजा भैरमदेव को जाँच की अवधि में रियासत से बाहर रायपुर में रखा गया (लोहंडीगुड़ा तरंगिनी, पृ० ६७)

राजा रुद्रप्रताप देव—

राजा भैरमदेव की मृत्यु २९ जुलाई १८९१ में हुई। उनका पुत्र रुद्रप्रताप देव उत्तराधिकारी हुए। अवस्था केवल ६ वर्ष की थी (एनवल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट १९०८ में प्रताप देव की अवस्था २३ वर्ष लिखा है)। राजा की अल्प-वयस्कता के कारण १८९१ से १९०८ के प्रारंभ तक वस्तर रियासत का प्रशासन अंग्रेजों द्वारा नियुक्त दीवान या एडमिनिस्ट्रेटर के माध्यम से संचालित होता रहा (ग्रीग्सन– माड़िया गोंड्स ऑफ वस्तर पृ० १४०) रुद्रप्रताप देव की शिक्षा दीक्षा की समुचित व्यवस्था की गई। रायपुर स्थित राजकुमार कालेज में उन्हें भरती किया गया था। वस्तर के वे पहले राजा थे जिन्हें ढंग से शिक्षा मिली। सन् १९०१ ई० में उनका विवाह बामड़ा की राजकुमारी से किया गया (एन्वल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ वस्तर स्टेट, वर्ष १९०१) १९०८ ई० में राजा रुद्रप्रताप देव को शासनाधिकार मिले, तब भी उन्हें तीन वर्षों तक दीवान की सहायता व परामर्श से शासन करना था। राजा रुद्रप्रताप देव का शासन-काल स्कूलों की संख्या में वृद्धि के लिए याद किया जावेगा। १९१० ई० के प्रारंभ में रियासत में स्कूलों की संख्या बढ़कर ६० तक पहुँच गई थी (एन्वल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ वस्तर फार द इयर १९१० रुद्रप्रताप देव के शासन-काल में सन् १९१० ई० में एक व्यापक आदिवासी संघर्ष छिड़ा। इसका विस्तृत वर्णन आगे के अध्याय में किया गया है। हृदयगति रुक जाने से उनकी मृत्यु १६ नवम्बर १९२१ ई० में हुई।

रानी प्रफुल्ल कुमारी देवी—

रुद्रप्रताप देव के पश्चात् उनकी पुत्री वस्तर की राजगद्दी पर बैठी। इसी के समय में वस्तर शासकों को वंशानुगत उपाधि 'राजा' से 'महाराजा' किया गया। ३१ मार्च १९३३ को यह व्यवस्था दी गई। (मेमोरेन्डा आन द इंडियन स्टेट्स पृ० ७५) १ अप्रेल १९३३ से वस्तर की यह रानी 'महारानी' संबोधित होने लगी "महारानी प्रफुल्ल कुमारी देवी"। २५ जून १९२९ ई० को रानी ने एक बालक को जन्म दिया। यही

बालक आगे चलकर बस्तर का चर्चित व्यक्तित्व महाराजा प्रवीरचंद्र भंजदेव हुआ। बस्तर के राजप्रमुखों में इसी रानी को यह गौरव प्राप्त है कि वायसराय से उसकी भेंट हुई। २८ जून १९३५ ई० को यह भेंट हुयी। वायसराय ने महारानी व बस्तर के बारे में जानकारी प्राप्त की। महारानी प्रफुल्लकुमारी देवी का विवाह मयूरभंज राजपरिवार के प्रफुल्लकुमार भजदेव के साथ हुआ। पिता भंजदेव और माँ काकतीय— इस स्थिति में प्रवीर चन्द्र ने अपने को दोनों उपनामों से सम्बोधित किया। वे अपने को प्रवीरचन्द्र भंजदेव 'काकतीय' लिखते थे। महारानी प्रफुल्ल कुमारी देवी देखने में प्रभावशाली व्यक्तित्व की स्वामिनी लगती थी। रियासत के एक भूतपूर्व ड्रायव्हर जिसे रानी को निकट से देखने का अवसर प्राय: मिलता था — कहता है— वास्तव में वह महारानी लगती थी। प्रफुल्लकुमारी देवी ने भारत के प्रमुख शहरों - कलकत्ता, दार्जिलिंग, दिल्ली, ऊटकमंड, आदि स्थलों की यात्रा तो की ही, कुछ प्रमुख यूरोपीय नगरों की यात्रा भी की। लगभग साढ़े तीन वर्ष उन्होंने लन्दन में व्यतीत किए। अपना इलाज करवाने वे लन्दन गई और वहीं २८ फरवरी १९३६ ई० को उनका देहवासन हो गया (रिपोर्ट आन द एडमिनिस्ट्रेशन आफ बस्तर स्टेट, वर्ष १९३६)

राजा प्रवीरचन्द्र भंजदेव—

रियासत कालीन बस्तर के अन्तिम शासक प्रवीरचन्द्र भंजदेव हुए। अपनी माँ की मृत्यु के तत्काल पश्चात् लन्दन में ही उनका राजतिलक किया गया। २४ अप्रेल १९३६ ई० को जगदलपुर में उन्हें राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया गया। इन्हीं के शासन-काल में नवम्बर १९३६ ई० को जब नया छत्तीसगढ़ स्टेट्स एजेंसी बना तो रियासत बस्तर भी उनके नियंत्रण निरीक्षण, निर्देशन में आया। राजा अल्प-वयस्क था अत: एक प्रशासनिक समिति बनी। एडमिनिस्ट्रेटर की अध्यक्षता में यह कार्य करती रही। प्रवीरचन्द्र भंजदेव को राज सुख भोगने का अधिक अवसर नहीं मिल पाया। १५ अगस्त १९४७ ई० में भारत आजाद हुआ। आजादी के तुरन्त पश्चात् देशी राज्यों के संयोजन का क्रम प्रारंभ हुआ। १ जनवरी १९८४ ई० को बस्तर भारत संघ में सम्मिलित हुआ।

इस प्रकार से अंग्रेजी सर्वोच्चता के जिस युग का प्रारंभ बस्तर में १८५५ ई० में हुआ वह सन् १९४७ ई० में समाप्त हुआ। इस युग में

बस्तर में चार शासक हुए राजा भैरमदेव, रुद्रप्रताप देव, रानी प्रफुल्ल कुमारी देवी, प्रवीरचन्द्र भंजदेव। अंग्रेजी सर्वोच्यता का यह युग बस्तर में अनेक परिवर्तनों को सामने लाने वाला सिद्ध हुआ।

अध्याय-छठवाँ

सन् १८७६ ई० की अशाँति

रियासत कालीन बस्तर में दो बार अशांति का वातावरण निर्मित हुआ। पहला अवसर सन् १८७६ ई० में आया और दूसरा सन् १९१० ई० में। दोनों तिथियों की अशांति में अन्तर है। १८७६ ई० में जहाँ आदिवासियों ने सशस्त्र प्रदर्शन करके बस्तर प्रशासन से अपनी बात मनवा ली वही सन् १९१० ई० में सशस्त्र प्रदर्शन से ही काम नहीं चला, शस्त्रों का खुलकर प्रदर्शन भी हुआ।

राजा भैरमदेव के शासन-काल में सन् १८७६ ई० में जो अशांत वातावरण निर्मित हुआ वह बस्तर के इतिहास में उल्लेखनीय है। बस्तर के सीधे-साधे, भोले-भाले आदिवासी अपने राजा को दैव-तुल्य मानते थे। सन् १८७६ ई० में आदिवासियों द्वारा सशस्त्र घेराव इसलिए और उल्लेखनीय हो जाता है। इस तिथि को आदिवासी मन: स्थिति एक दोराहे पर थी। परम्परा से राजा के प्रति असीम भक्ति एक ओर थी, दूसरी ओर अत्याचार व दमन की शृखँला थी जिसका प्रतिकार अति-आवश्यक हो गया था। 'भावना से कर्तव्य ऊँचा होता है'—संभवत इस आदर्श वाक्य को चरितार्थ करने के उद्देश्य से उन्होंने अपने असंतोष को मुखरित करने का निश्चिय किया।

२ मार्च १८७६ ई० को आदिवासियों ने राजधानी जगदलपुर को चारों ओर से घेर लिया, संचार व आवागमन अवरुद्ध कर दिया। अशाँत वातावरण का निर्माण २ मार्च १८७६ से हुआ, यह अशांति सप्ताहों तक चली। लगभग २-३ हजार सशस्त्र रैय्यतों ने यह घेराबन्दी प्रारम्भ की थी। जैसे-जैसे दिन बीतता गया, संख्या और बढ़ती गई। राजा भैरमदेव के लिए अकल्पनीय स्थिति थी। आदिवासी, राजा का घेराव करें यह अविश्वसनीय लगता है मगर यथार्थ से आँख मूँदा नहीं नहीं जा सकता था। राजा ने अंतिम अवलंबन लिया। अंग्रेज अधिकारियों को घेरे की सूचना भेजने में वे समर्थ रहे। ४ मार्च को एक पत्र लिखकर विशाखापटनम के अंग्रेज एजेंट को वस्तु-स्थिति से अवगत

कराया गया। इस पत्र में राजा ने बड़ी दीनता के साथ सात परगनों के रैय्यतों द्वारा विप्लव किए जाने की सूचना दी। अपने सम्मान व हितों की रक्षा के लिए शीघ्र कायवाही का अनुरोध किया गया। (राजा का यह पत्र राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली में सुरक्षित है ४ मार्च को लिखे पत्र का असर न होते देख राजा ने १० मार्च को दूसरा पत्र प्रेषित किया। इस दूसरे पत्र में पिछले आठ दिनों से राजधानी के घिरे रहने का समाचार भेजा गया। विप्लवकारी लूटमार कर रहे हैं, यह आरोप भी लगाया गया। 'सैन्य टुकड़ी सहित आकर मेरे जीवन व सम्मान की रक्षा कीजिए' — यही भाव मुख्य था।

बस्तर के प्रशासन पर नजर रखने का कार्य सिरोंचा स्थित डिप्टी-कमिश्नर को सौंपा गया था। अशांति की सूचना उसे ही भेजनी थी मगर बस्तर से सिरोचा की दूरी अधिक होने और दक्षिण बस्तर के अशांत होने के कारण उसे समाचार भेजना अति-मुश्किल था। इस स्थिति में राजा ने जयपुर की ओर से विशाखापटनम स्थित अंग्रेज एजेंट को पत्र भेजा और उससे अनुरोध किया कि सिरोंचा खबर पहुँचावे।

राजा के बारम्बार निवेदन किए जाने पर पूरी तैय्यारी के साथ विशाखापटनम के एजेंट इस्टाल के नेतृत्व में २६७ पुलिस व २५० पैक जगदलपुर के लिए रवाना हुए। डिप्टी-कमिश्नर सिरोंचा को भी बस्तर में अशांति की सूचना भेजी गई। वे भी ९१ सशस्त्र लोगों के साथ सिरोंचा से प्रस्थान कर ५ अप्रेल को जगदलपुर पहुँचे। अपर गोदावरी डिस्ट्रीक्ट के डिप्टी-कमिश्नर एच० जे० मैकजार्ज इसके नेता थे।

विप्लवकारी इस ढंग से राजधानी जगदलपुर की घेराबंदी किए हुए थे कि न तो कोई व्यक्ति जगदलपुर में प्रविष्ट हो सकता था और न जगदलपुर से बाहर जा सकता था। ऐसी स्थिति में समाचार प्रेषित करना टेढ़ी खीर था। बड़े मुश्किल से एक महार को इस कार्य के लिए तैयार किया गया। उसकी पेज की हंडी में मोम लिपटा पत्र छुपाया गया। महार राजधानी से बाहर निकला और किसी प्रकार पत्र जयपुर पहुँचा। कोटपाड़ की डाक में पत्र छोड़ा गया (लोहंडीगुड़ा तरंगिनी, पृ० ६४) राजा के पास अपने अस्सी बंदूक-धारी पुलिस थे मगर उनकी हिम्मत नही हुई कि वे विप्लवकारियों से अपने बलबूते पर निपटें। विप्लवकारियों ने भय का ऐसा आलम निर्मित कर दिया था कि राजा

और उसके सम्बंधी अपने महल में ही नजरबन्द की स्थिति में अठारह दिनों तक पड़े रहे। २० मार्च को इस्टाल के नेतृत्व में सहायता-टुकड़ी के जगदलपुर पहुँचने पर ही वे महल से बाहर निकल सके।

पराधीन भारत में किसी भी स्थल पर विद्रोह, विप्लव होने के समाचार मिलते ही ऊपर से नीचे तक के अंग्रेज अधिकारियों की रातों की नींद हराम हो जाती थी। ऐसा ही इस अवसर पर भी हुआ। कई प्रश्न सामने अनुत्तरित खड़े थे। विप्लवकारी क्या चाहते हैं? उनका असंतोष किनके प्रति है? ये प्रश्न ऐसे थे जिनके उत्तर में ही अंग्रेज अधिकारियों की चिन्ता मिटनी या बढ़नी थी। मैकजार्ज ने बस्तर आते ही सर्वप्रथम इसी प्रश्न का उत्तर प्राप्त किया। विप्लवकारियों से प्रथम मुलाकात में ही उन्होंने यह जानने का प्रयास किया कि उनकी मंशा क्या है? वे सशस्त्र प्रदर्शन व घेरावन्दी क्यों किए हुए हैं? उन्हें क्या शिकायत है? विप्लवकारियों ने भी स्पष्ट रुप से अपनी बात सामने रखी· "अंग्रेजी सरकार से उनको कोई लड़ाई नहीं है और वे केवल न्याय चाहते हैं।"— मैकजार्ज को जैसे ही यह ज्ञात हुआ उनकी ७५% चिन्ता दूर हुयी। बैलगाड़ियों, घोड़े पर खराब रास्ते पर २४ मार्च से यात्रा करते आ रहे मैकजार्ज की सारी थकान दूर हो गई।

कैप्टन सी० इस्टाल व मि० रोस कोटपाड़ से १८ मार्च को रवाना होकर २० ता० को जगदलपुर की सीमा पर पहुँचे। राजा के भाई ने उनका स्वागत किया, उनका शिविर इन्द्रावती नदी के किनारे लगाया गया। इस्टाल को रास्ते में दोनों ओर विप्लवकारियों की टुकड़ियाँ मिली। ये अस्त्र-शस्त्र से लैस थे, कुछ के पास तो तोड़दार बन्दूकें भी थी। आदिवासियों के मुखियों ने इन्हें स्पष्ट बतलाया कि उनकी लड़ाई राजा से नही है वरन् दीवान व मुंशी से है। इस्टाल ने उन्हें बड़े अधिकारी के आते तक शांत रहने को कहा।

ऊपर गोदावरी डिस्ट्रीक्ट के डिप्टी–कमिश्नर मि० मैकजार्ज सिरोंचा से जगदलपुर की १६० मील की यात्रा पूरी करते ५ अप्रेल को जगदलपुर पहुंचे। आदिवासी पलक पांवड़े बिछाए उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। विप्लवकारी नेताओं ने हिन्दी में लिखा एक शिकायत-नामा मैकजार्ज को प्रस्तुत किया। इसमें दीवान व मुंशी के काले कारनामों का वर्णन था। इन नेताओं ने कहा कि वे अत्याचारी, अन्यायी दीवान व

मुंशी को रियासत वस्तर से निष्कासित देखना चाहते हैं। वे अंग्रेज अधिकारी से न्याय चाहते हैं।

मैकजार्ज ने उनके सशस्त्र इकठ्ठा होने और जगदलपुर घेरने को गलत कदम बताया और सर्वप्रथम आवश्यकता बतलाई कि भीड़ वापस लौटे। नेता व उनके ५-६ सौ अनुयायी रह जायें इन्हें सुरक्षा का पूर्ण आश्वासन दिया गया। ८ अप्रेल को एक विशेष दरबार का आयोजन किया गया। राजा भैरमदेव दरबारी व विप्लवकारी इसमें उपस्थित हुए। मैकजार्ज ने अपना मुख्य कार्य शांति व व्यवस्था स्थापित करना और फिर शिकायतों को सुनना बतलाया। विप्लवकारियों को स्पष्ट कहा कि वस्तर के आदिवासियों द्वारा किया गया यह पहला विप्लव नहीं है, मगर जहाँ तक अंग्रेजी सर्वोच्यता के युग का प्रश्न है— यह पहला है। आज की तिथि के पश्चात् विप्लवकारियों द्वारा की गई कोई भी गड़बड़ी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध मानी जावेगी। वे न तो राजा से और न राजा की ओर से विद्रोहियों से लड़ने आए हैं। मैकजार्ज की दो टूक बात आदिवासियों को प्रभावित कर गई वे गाँवों की ओर लौटने लगे।

राजा भैरमदेव से उन्होंने मुलाकात की और स्थिति की गंभीरता से उन्हें अवगत कराया। राजा बारम्बार दीवान व मुंशी की प्रशंसा करते रहे और किसी भी कीमत पर उन्हें रियासत से निष्कासित करने को सहमत नहीं हुए। गंभीरता-पूर्वक विचार करने के पश्चात् राजा ने अपने महल से यह संदेशा भिजवाया कि वह मैकजार्ज जैसा करेंगे उसे अपना स्वीकृति देंगे।

१८७६ ई० की यह अशांति २ मार्च से ५ अप्रेल तक बनी रही। मैकजार्ज के बुद्धिमतापूर्ण कदम ने शस्त्रों को तरकश में ही रहने दिया। इस अशांति का शुरुआत १ मार्च १८७६ ई० से हुई। राजा भैरमदेव प्रिंस आफ बेल्स से मुलाकात करने समीपवर्ती रेल्वे स्टेशन सिरोचा की ओर बढ़े। दीवान गोपीनाथ कापड़दार उनके साथ थे। जगदलपुर से २० मील दूर ब्रूमपाल पहुँचने पर बेगार कर रहे कुलियों ने राजा का सामान फेंक दिया और स्पष्टीकरण चाहा कि क्या राजा सदैव के लिए रियासत से बाहर जा रहे हैं राजा ने सिरोचा जाने की बात कही। कुलियों ने दीवान को भेजने की सलाह दी। राजा की अनुपस्थिति में दीवान व

मुंशी अदित प्रसाद के अत्याचार और बढ़ जावेंगे – यह भय आदिवासियों को सता रहा था।

राजा का सामान कुलियों द्वारा फेंक दिया जाना, दीवान के लिए एक चुनौती थी। क्रोधित होकर उसने १८ आदिवासियों को पकड़वाया और कोड़ों, डंडों से बुरी तरह पिटवाया और उन्हें हिरासत में रखने हेतु जगदलपुर की ओर रवाना किया।

राजा की टुकड़ी कुछ मील आगे बढ़ी। १५०० रैय्यतों ने इस टुकड़ी को घेर लिया और पुनः दीवान व मुंशी के निष्कासन की मांग की। गोपीनाथ क्रोधित हो उठा उसने सुरक्षा सैनिकों को आदिवासियों पर गोली चलाने का आदेश दिया। गोली चली, तलवार चली. २ रैय्यत मारे गए. २ बुरी तरह से आहत हुए। रैय्यत भाग खड़े हुए। राजा ने वापस जगदलपुर लौटने का निश्चय किया। आदिवासियों ने गोपीनाथ के इस गोली चालन को गभीरता से लिया। वे कृतसंकल्प हुए। अपनी रणनीति उन्होंने तय की और जगदलपुर को घेरकर अपने आक्रोश का परिचय दिया।

ब्रूमपाल की घटना तो १८७६ ई० के संघर्ष का तात्कालिक कारण था। वास्तव में जब से गोपीनाथ कापड़दार दीवान पद पर नियुक्त हुआ था तभी से असंतोष के कारण इकट्ठे होने लगे थे। दीवान ने राजा को पूरी तरह से मुट्ठी में कर लिया था। कोई भी व्यक्ति राजा से सीधे नहीं मिल सकता था। रैय्यतों को दबाने, सताने का सिलसिला प्रारंभ हुआ। अपने विरोधियों को पकड़वाकर वह क्रिमनल कोर्ट के प्रभारी मुंशी अदीत प्रसाद से मनमाने दंड दिलवाता था। अदीत प्रसाद उसका मित्र था। दो बड़े पदों पर गोपीनाथ व अदीत प्रसाद नियुक्त थे। एक कार्यपालिका का प्रमुख अंग था दूसरा न्यायपालिका का। आदिवासियों को असंतोष इस बात से भी था कि बाहरी व्यक्ति रियासत में भू-स्वामी होते जा रहे थे, अदालत द्वारा मनमाने कठोर दंड दिए जा रहे थे। बेगार, बिना दाम चुकाए सामान ले लिया जाना, कोड़ों की मार, जेल की सजा ये सब तब तक होते रहेंगे। इनसे छुटकारा पाने के लिए आदिवासियों ने अपनी एक सूत्रीय माँग प्रशासन के सम्मुख रखी— "दीवान गोपीनाथ व मुंशी आदित प्रसाद को बस्तर से निष्कासित किया जाय"। जैसे ही इस माँग की पूर्ति के आसार दीखे आदिवासियों ने

अपना घेरा उठा लिया।

शांत परन्तु सशक्त आंदोलन आदिवासियों ने किया। अपनी ओर से रक्त की एक बूँद भी नहीं बहने दिया। सशस्त्र प्रदर्शन करके ही अंग्रेज अधिकारियों से अपनी बात उन्होंने मनवा ली। दीवान व मुंशी को रियासत से निष्कासित होना पड़ा। राजशाही में ऐसी सफलता प्राप्त करना— आदिवासियों के लिए गौरवपूर्ण था।

१८७६ ई० की अशांति के लिए किसी भी आदिवासी नेता को दंडित नहीं किया गया। वास्तविक अपराधी ही सजा पाए। अशांत वातावरण को शांत करने में ब्रिटिश सरकार को लगभग ग्यारह हजार रुपए व्यय करने पड़े। यह राशि किश्तों में बस्तर से वसूल किया गया। राजा भैरमदेव को अपनी गलती महसूस हुई। वे भी दीवान गोपीनाथ के चंगुल से मुक्त हुए।

अध्याय-सातवाँ

सन् १९१० ई० का विप्लव

"आँखों के लिए प्रकाश का, फेफड़ों के लिए हवा का, हृदय के लिए प्रेम का जो महत्व है, वही महत्व मनुष्य की आत्मा के लिए स्वतंत्रता का है"– ऐसा इंगोरसोल ने कहा है। धरती तो आदमी को चाहिए ही, लेकिन उन्मुक्त आकाश की भी उसके लिए कुछ कम आवश्यकता नहीं है। स्वतंत्रता भी विचित्र है। भारतीय पुराण प्रतीकों की भाषा में स्वतंत्रता को कामधेनु, कल्प-वृक्ष माना जा सकता है। वृक्ष को विकास के लिए चाहिए जल लेकिन स्वतंत्रता का वृक्ष-जल का नहीं रक्त का सिंचन चाहता है। इतिहास के सहस्त्रों वर्षों के फैले हुए काल फलक पर सभी को अपनी आजादी के लिए विचलित होते देखा गया है। स्वतंत्रता से निरपेक्ष मानव सत्ता की कोई सार्थकता नहीं है। भूखे पेट वाला भी स्वतंत्रता चाहता है और नंगी पीठवाला भी स्वतंत्रता चाहता है।

पौराणिक मान्यता है कि जब पाप का घड़ा भर जाता है तब वह फूटता है। ऐतिहासिक मान्यता है कि अन्याय व अत्याचार की अति, संघर्ष को जन्म देता है। बस्तर के १९१० ई० के विप्लव को समझने के लिए इस तथ्य को विस्मृत नहीं करना होगा। सहसा विश्वास नहीं होता कि सीधे-साधे, निश्छल, शांत प्रकृति के बस्तर के इन आदिवासियों ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद से संघर्ष किया। अपनी नीतियों-रीतियों, आस्थाओं-

संस्थाओं को बनाए रखने के लिए सदियों पहले ये बनवासी मैदानों को छोड़कर बीहड़ वनों में जा बसे थे। अपनी इन्हीं व्यवस्थाओं व संस्थाओं की रक्षा के लिए आदिवासियों ने अपने परम्परागत अस्त्र-शस्त्रों से अंग्रेजों के आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्रों का सामना किया। देखा जाय तो एक तरह से यह लड़ाई शीशे और पत्थर की लड़ाई थी। शीशा चाहे पत्थर से टकराए चाहे पत्थर शीशे से, चूर-चूर तो शीशे को ही होना था। हुआ भी वही। नुकसान हुआ बेचारे आदिवासी का। लेकिन सर पर कफन बांधकर निकलने वाले इसकी परवाह ही कब करते हैं।

बस्तर, बस्तर-वासियों का है—

अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध सन् १८७६ ई० में बस्तर के आदिवासियों ने आवाज़ उठाई थी। सशस्त्र प्रदर्शन कर उन्होंने अपने पर अत्याचार व अन्याय करने वालों को बस्तर से निष्कासित करवाया था। १८७६ ई० से १९१० ई० के मध्य काफी पानी इन्द्रावती से बह चुका था। १८७६ से १९१० ई० के मध्य की शांति तूफान से पूर्व की निस्तब्धता थी। १९१० ई० में यह निस्तब्धता टूटी, बिजली चमकी और झंझावात ने पूरे बस्तर को हिला दिया। सन् १९१० ई० का यह विप्लव बस्तर 'बस्तरवासियों का है" इस नारे को लेकर प्रारंभ हुआ था। बस्तर के भतरा, परजा, मुरिया, माड़िया, हलबा, धाकड़, गांडा और महरा जाति के लोगों ने इस विप्लव में भाग लिया। विप्लव से बुरी तरह प्रभावित भाग कोंडागाँव के दक्षिण और छोटे डोंगर के पूर्व से लेकर चिन्तलनार व सुकमा की पट्टी तक था। यह लगभग १३७ कि० मी० लम्बा ९८ कि० मी० चौड़ा भू-भाग था। इसलिए श्री व्हो० राघवैह ने लिखा है— "ज़मींदारों और अबझमाड़ियों को छोड़कर शेष सभी (बस्तर निवासियों) विप्लव-कारियों में सम्मिलित थे" (ट्राइबल रिव्होल्ट्स, पृ० १९५) सन् १८७६ की अशांति के काल में प्रभावित भू-भाग से यह कहीं अधिक विस्तृत था।

गुप्त तैय्यारी—

सन् १९१० ई० के विप्लव की सबसे बड़ी विशेषता इसकी गुप्त तैयारी थी। प्रशासन को जरा सा भी आभास विप्लव का नहीं मिल पाया था। संघष का प्रारंभ प्रशासन को विस्मय में डालने वाला था। 'प्रशासन की बात तो छोड़ दीजिए, बस्तर रियासन में आदिवासियों के बीच जगह-जगह बसे हुए परदेशियों तक को संघर्स की तैयारी की

भनक नहीं लग पाई (डी० आर० अवस्थी, लेख– बस्तर का जलियांवाला बाग, कादंबिनी मार्च १९७२) विप्लव के लिए आदिवासियों को तैयार करने में नेतानार इलाके के परजा लोगों ने सक्रिय भूमिका निभाई। सन् १८५७-५८ के महाविद्रोह के पूर्व जिस प्रकार रोटी व कमल गाँव गाँव घुमाए गए थे वैसे ही १९१० ई० के विप्लव से पूर्व, बस्तर के गाँवों में एक तीर, लाल मिर्च, मिट्टी का टुकड़ा, धनुष या भाला की अनुकृति घुमायें गए थे। यह सांकेतिक भाषा में विप्लव के लिए तैयार रहने का संदेशा था। जिसे बस्तर के आदिवासी समझते थे।

तत्कालीन राजनीतिक दशा—

बस्तर की तत्कालीन राजनैतिक दशा कुछ इस प्रकार की थी, कि राजगद्दी पर राजा रुद्रप्रताप देव थे, उनकी सहायता के लिए अंग्रेजों द्वारा नियुक्त दीवान था इस दीवान के ऊपर पोलिटिकल एजेंट रायपुर में रहता था जो मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ क्षेत्र के सारे देशी राजवाड़ों का वास्तविक शासक था। इस पोलिटिकल एजेंट की सत्ता बस्तर के तत्कालीन राजा रुद्रप्रताप देव पर चाहे जितनी अधिक छायी रही हो पर बस्तर के मूल निवासियों पर उसका कोई प्रभाव नहीं था बस्तर का जालियांवाला बाग, लेख, डी० आर० अवस्थी) बस्तर के मूल निवासी अपने राजा को सर्वोच्च शक्ति सम्पन्न मानते थे इसलिए उन्हें यह सुनकर आश्चर्य होता था – जब राजा अपने को असमर्थ बतलाता था। दीवान के माध्यम से पूरी पकड़ अपने हाथों में रखने की मंशा रखने वाले अंग्रेज, दीवान के अधिकार चाहे जितना बढ़ाते जाये, बस्तर के मूल निवासियों में यह दीवान कभी भी लोकप्रिय नहीं हुआ। जब राजपरिवार का कोई व्यक्ति इस पद पर रहता तब जरुर उसे पर्याप्त महत्व दिया जाता। लाल दलगंजन सिंह और लाल कालेन्द्र सिंह इसके प्रमाण हैं। 'फूट डालो और राज करो' प्रत्येक साम्राज्यवादी की नीति होती है, अंग्रेजों ने भारत में और विशेषकर देशी रियासतों में इस नीति को व्यापक तौर पर अपनाया। बस्तर में भी राजपरिवार को एका उन्होंने तोड़ी। लाल कालेन्द्र सिंह जैसे अनुभवी व प्रभावी व्यक्तित्व के होते हुए भी उन्होंने बस्तर पर बाहरी दीवान व प्रशासक थोपे। बस्तर का आदिवासी थोपी हुई कोई वस्तु सहन करने को तैयार नही होता फिर भला वह थोपे गए दीवान को कैसे सहन करता। सन् १८७६ ई० में

थोपा गया दीवान अलोकप्रिय सिद्ध हुआ उसे बस्तर से निष्कासित करके आदिवासियों ने दम लिया सन् १९१० ई० में भी यही अलोकप्रिय दीवान बस्तर के आदिवासियों के आक्रोश का शिकार हुआ, उसे भी दीवान पद छोड़ना पड़ा, रियासत बस्तर छोड़ना पड़ा।

लाल कालेन्द्र सिंह–

लाल कालेन्द्र सिंह, लाल दलगंजन सिंह के सुपुत्र थे। राजा रुद्र प्रताप देव के वे चाचा थे। राजा उनसे अन्दर ही अन्दर भय खाता था। वह और दीवान जितनी उपेक्षा दिखाते आदिवासी उतनी ही अपेक्षा कालेन्द्र सिंह से रखते थे। रियासत में दिनोंदिन राजा की शक्ति घटती जा रही थी और दीवान की शक्ति बढ़ती जा रही थी। शक्ति का यह चुपचाप हस्तांतरण कालेन्द्र सिंह के लिए असह्य था। हस्तांतरित शक्ति का प्रयोग दीवान ने कुछ इस ढंग से करना प्रारंभ किया जिसका अंतिम हृश्र विप्लव के रुप में सामने आया। क़ालेन्द्र सिंह को रियासत क़ी ओर से सौ रुपए मासिक भत्ता प्राप्त होता था। इसके अतिरिक्त मोकासा के रुप में प्राप्त जमीन से वार्षिक तीन हजार रु० की आय होती थी। (एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ बस्तर स्टेट, फार द इयर १८८८–८९) यह राशि उन्हें कम पड़ती थी। वे हमेशा कर्ज में डूबे रहते थे। अपने पुत्रो के विवाह के लिए उन्होंने रियासत से अनुदान मांगा था, वह भी उन्हें नहीं मिला। वनों के आरक्षित किए जाने के निर्णय के फलस्वरुप कालेन्द्र के कुछ गाँव उनसे छीन लिए गए। इन सभी कारणों ने कालेन्द्र सिंह को विद्रोही बना दिया। आदिवासियों में वे परम लोक प्रिय तो थे ही। उनकी सहायता से अपने लिए रियासत में महत्वपूर्ण पद प्राप्त करने का उन्होंने प्रयास किया। यही प्रयास सन् १९१० ई० के विप्लव के रुप में सामने आया। सन् १८७६ की घटनाएं अस्पष्ट रुप में ही सही उनके मन मस्तिष्क में घर की हुई थी। उस काल में जिस प्रकार सशस्त्र प्रदर्शन कर आदिवासियों ने अन्यायो, अत्याचारो दीवान को हटाने में सफलता पाई थी उसी को पुनरावृत्ति वे सन् १९१० ई० में करवाना चाहते थे। रानी सुवर्ण कुँवर, राजा रुद्रप्रताप देव की सौतेली माँ थी, वह भी विद्यमान प्रशासनिक व्यवस्था व अपनी उपेक्षा से असंतुष्ट थी, उन्होंने भी विप्लव-कारियों की सहायता की। सी० एचिसन ने इसीलिए लिखा है कि राजपरिवार के षड़यंत्रों ने विप्लव को मूल कारण दिया।

(ए कलेक्शन आफ ट्रिटिश, इंगेजमेंट एंड सनद्स खंड २, पृ० ४८७) राजा रुद्रप्रताप देव ने सन् १९१० ई० में बस्तर प्रशासन सम्बंधी जो रिपोर्ट उच्च-अधिकारियों को भेजी उसमें राजपरिवार के विद्रोह को संघर्ष का कारण बतलाया है (एन्वल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ बस्तर स्टेट, फार द इयर १९१०)

दीवान पंडा बैजनाथ—

१८७६ ई० में जिस प्रकार असंतोष के मूल में तत्कालीन दीवान गोपीनाथ कापड़दार था, उसी प्रकार सन् १९१० ई० के विप्लव-काल में दीवान पंडा बैजनाथ मूल कारणों में से एक थे। रियासत के सुप्रिन्टेन्डेन्ट के रुप में वे सन् १९०३ से कार्यरत थे। सन् १९०८ ई० में वे दीवान बनाए गए। राजा को आगामी तीन वर्षो तक दीवान की सलाह व सहायता से ही शासन करना था। शासन शक्ति का दीवान के हाथों में केन्द्रित रहना न तो लाल कालेन्द्र सिंह सह सकते थे न राजमाता सुवर्ण कुँवर देवी। दीवान से बस्तर के आदिवासी भी असंतुष्ट थे क्योंकि उन्होंने आरक्षित वन पद्धति को बढ़ावा दिया। सन् १९०७ ई० में तीन आरक्षित वन क्षेत्र बनाए गए (एन्वल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ बस्तर स्टेट फार द इयर १९१०) नए स्कूल तो खोले ही गए, स्कूलों के मास्टरों व मानिटरों के कार्यों ने असंतोष को बढ़ावा दिया। बेगार, बिसाहा, व भूमि सम्बंधी विवाद ने विस्फोटक स्थिति पैदा की। बस्तर के आदिवासी पंडा बैजनाथ से इतने अधिक नाराज थे कि विप्लव-काल में उनकी हत्या का प्रयास किया गया।

आदिवासियों का असंतोष—

१) राजा से प्रत्यक्ष भेंट नही हो पाती थी।

२) वन आरक्षित किए गए जिससे आदिवासियों को परेशानी हुई। वन ही आजीविका का साधन था उसे आरक्षित करने से आजीविका प्रभावित हुई।

३) नए स्कूल एक समस्या थे। अपने बालक को स्कूल भेजने का अर्थ काम करने वाले दो हाथों की कमी थी। मास्टर व मानिटर पालकों को परेशान करते थे।

४) रियासत के अधिकारी, कर्मचारी आदिवासियों के साथ दुर्व्यवहार करते थे। अन्यायपूर्ण मांग रखते थे। मुफ्त में या बहुत कम कीमत देकर

आदिवासियों से वस्तुए लेते थे।

५) बेगार से असंतोष था। राजा, मालगुजार तो बेगार लेते ही थे छोटे-छोटे कर्मचारी भी बेगार लेने लगे थे। नए सड़कों के निर्माण से, सड़क किनारे के गाँव बेगार के भय से उजड़ गए (बस्तर-भूषण पृ० २६)

६) प्रवासी-जनों से असंतोष था। ये प्रवासी चालक थे, राज्याश्रय इन्हें प्राप्त था। उपजाऊ भूमि इन्होंने अपने नाम करवा रखी थी। व्यापार-वाणिज्य के द्वारा आदिवासियों का शोषण करते थे।

७ जन्म से मृत्यु तक के सभी संस्कारों के लिए आदिवासी को शराब की आवश्यकता होती है। शराब के ठेके दिए जाने की व्यवस्था से आदिवासी अपने लिए शराब नहीं बना सकता था। शराब ठेकेदारों के शोषण ने उसके असंतोष को काफी बढ़ाया।

८) माफी भूमि का अपहरण आदिवासियों के असंतोष का एक कारण बना। सन् १८९८ ई० में बहुतों की माफी जब्त कर ली गई (बस्तर-भूषण पृ० १२२)

९) महंगाई के कारण भी आदिवासी असंतुष्ट था। १८९० ई० में जो चांवल एक रुपए में ८० सेर बिकता था, वह अब महंगा होकर एक रुपए में ८ सेर हो गया। सड़कों के निर्माण व निर्यात के कारण चांवल के भाव बढ़े। यह महंगाई आदिवासी अर्थ–व्यवस्था को चरमरा देने वाला सिद्ध हुआ।

बस्तर में अंग्रेजी सर्वोच्यता के काल में १८७६ और १९१० ई० में हुए संघर्ष ने यह स्पष्ट कर दिया कि आदिवासियों को अंग्रेजी हस्तक्षेप अमान्य है। वे अपने राजा द्वारा शासित होना चाहते थे। अंग्रेजों द्वारा नियुक्त दीवान के विरुद्ध किया गया, दोनों संघर्ष अंततः अंग्रेजों के विरुद्ध ही संघर्ष माना जा सकता है। बस्तर, बस्तर में निवास करने वाले वनवासियों का है' यह युद्ध-घोष था। स्पष्ट है कि अग्रेज बस्तर का वन-वासी नहीं था। संघर्ष-काल में आदिवासी नेता सुकटा धाकड़ ने अपने सहयोगियों से स्पष्ट कहा था — पहले का राज्य समाप्त कर दिया गया है। अब मुरिया राज आ गया है। पहले का राज यानि की अंग्रेज संरक्षित राज्य। अंग्रेजों से इतनी चीढ़ आदिवासियों को थी की १९१० ई० के संघर्ष-काल में अंग्रेजों को मार डालने का संकल्प उन्होंने ले रखा था।

घटना क्रम —

सन् १९१० ई० का विप्लव अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय है। अंग्रेजी सर्वोच्चता के युग में पहली बार बस्तर के आदिवासियों ने अपनी शिकायतों के स्थाई समाधान के लिए अपने परम्परागत अस्त्र-शस्त्रों का सहारा लिया। सशस्त्र, व्यापक संघर्ष ने बस्तर-प्रशासन को आदिवासियों की समस्याओं के निराकरण के लिए प्रेरित किया। २ फरवरी १९१० ई० को पूसपाल बाजार की लूट से विप्लव का प्रारंभ हुआ जो लगभग ढाई माह तक चला। विप्लव के समाचार ने राजा रुद्रप्रताप देव को किंकर्तव्य विमूढ़ कर दिया। उच्च अधिकारियों को इसकी सूचना दी जाय अन्यथा नहीं, इसी का निर्णय वे नहीं कर पा रहे थे। विप्लवकारियों को शांत करने के लिए लाल कालेन्द्र सिंह की सहायता ले अन्यथा न ले इस ऊहापोह में वे थे। पुलिस इसपेक्टर जगन्नाथ प्रसाद ने राजा को ऊहापोह से मुक्त किया, दृढ़तापूर्वक उन्होंने उच्चाधिकारियों को विप्लव की सूचना देने का आग्रह किया। राजा रुद्रप्रताप देव ने ७ फरवरी को पोलिटिकल एजेंट रायपुर और चीफ कमिश्नर नागपुर को तार द्वारा विप्लव की सूचना भेजी और शीघ्र सहायता की याचना की। राजा यदि दो-एक दिन और ऊहापोह में रहते तो पासा पलट चुका होता। विप्लवकारियों ने बस्तर और भानपुरी के पास तार लाइन को काट डाला मगर तब तक विप्लव का समाचार भेजा जा चुका था।

तार प्राप्त होते ही अंग्रेज अधिकारियों की रातों की नींद हराम हो गई। बस्तर से परिचित मि० गेयर और डीब्रे को ही यह कार्यभार सौंपा गया कि वे विप्लव को दबाएं। सेन्ट्रल प्राविन्सेन्स मद्रास से पुलिस टुकड़ी तो आयी ही पंजाबी रेजिमेंट के सैनिक भी विप्लव का दमन करने के लिए बस्तर आए। कुल मिलाकर पाँच सौ से अधिक सिपाही व सैनिक बस्तर आए।

अंग्रेज अधिकारियों के सम्मुख समस्या थी कि विप्लव का सामना किस प्रकार से किया जाय। १८७६ ई० की अशांति के दौर में जिस प्रकार अंग्रेज अधिकारियों के आते ही आदिवासी आत्म-समर्पण कर दिए थे, क्या उसी प्रकार की स्थिति फिर आवेगी, या संघर्ष करना होगा? यह अनिश्चितता अंग्रेज अधिकारियों के सम्मुख थी। सिपाही और सैनिकों की संख्या में तो उन्होंने कोई कमी नहीं की। अधिक से अधिक सिपाही

व सैनिक बस्तर पहुँचे इसकी व्यवस्था की गई।

१६ फरवरी को जब अग्रीम टुकड़ी इन्द्रावती नदी के किनारे खड़ग-घाट पहुँची तब उसे सैकड़ों की संख्या में विप्लवकारियों ने घेर लिया। बारम्बार चेतावनी दिए जाने पर भी जब वे घेरा डालने से बाज नहीं आए तब गोली चालान का अंतिम अस्त्र काम में लाया गया। पाँच आदिवासी घटनास्थल पर मारे गए। मि० डीब्रे और मि० गेयर की टुकड़ी जगदलपुर पहुँचने में सफल रही। खड़गघाट की घटना ने स्पष्ट कर दिया कि आदिवासियों की मुद्रा संघर्ष की है। जगदलपुर पहुँचकर इन अधिकारियों ने और सैनिकों सिपाहियों के आने को प्रतीक्षा की। प्रतीक्षा की इन घड़ियों में उनका व्यवहार नरम रहा मगर जैसे ही इनकी शक्ति बढ़ी ये शेर हो गए। समझौता वार्ता लगभग असफल हो गया। लाल कालेन्द्र सिंह को गिरफ्तार कर अंग्रेज अधिकारियों ने मानों विप्लवकारियों को चुनौती दे दी। २५ फरवरी को यह गिरफ्तारी की गई।

आदिवासियों ने तय कर रखा था कि उन्हें क्या कार्यवाही करनी है। विप्लव से प्रभावित पूरे क्षेत्र में स्कूल, पुलिस चौकी, वन चौकी, शासकीय कार्यालय जलाए गए। राजकीय कर्मचारी आदिवासियों के आक्रोश के शिकार हुए। इन्हें जान से मार डालने का उपक्रम किया गया। कुछ मरे अधिकांश, भाग खड़े हुए। इनकी सम्पत्ति फूँक दी गई, इनका परिवार बे-इज्जती से नहीं बचा। कुँवाकोंडा के माड़ियान इलाके में विप्लव खूनी रुप ले चुका था जिन लोगों ने विप्लवकारियों का साथ नहीं दिया वे आक्रोश के शिकार हुए। वे आदिवासी नेता भी विप्लव-कारियों के मार काट से न बच सके जिन्होंने विप्लव में भाग नहीं लिया। छोटे तुमनार का नेगी ऐसा ही एक व्यक्ति था। ४ फरवरी को कूका-नार बाजार लूटा गया। इसी स्थल पर विप्लवकारियों ने पहली हत्या की। नुरसव खाँ नामक रोहिला व्यापारी मार डाला गया। इस हत्या का आरोपी बुन्थु परजा और सामनाथ धाकड़ को बनाया गया। न्याय का नाटक रचा गया और ६ अप्रेल १९१० ई० को इन्हें फाँसी पर लटका दिया गया। वायसराय से मर्सी अपील का भी कोई फायदा नहीं हुआ।

दीवान पंडा बैजनाथ से बस्तर के आदिवासियों को सख्त चीढ़ थी। संघर्ष के प्रारंभिक दिनों में ही विप्लवकारियों की एक टुकड़ी दीवान की

हत्या के उद्देश्य से दक्षिण वस्तर की ओर बढ़ी, जहाँ दीवान दौरे पर निकले थे। दीवान को जैसे ही विप्लव की सूचना मिली वे रियासत की सीमा से बाहर चाँदा जिले में शरण लिए। प्रमुख शिकार हाथ से निकल गया। दीवान की हत्या कर दी गई है यह प्रचारित किया गया।

एक ओर आदिवासी झुकने को तैयार नहीं थे दूसरी ओर अंग्रेज अधिकारी भी उन्हें सबक देने की ठाने हुए थे। ऐसी स्थिति में खून-खराबा तो होना ही था। १६ फरवरी को खड़गघाट में पाँच आदिवासियों का खून बहा। ९ मार्च को दूसरी मुड़भेड़ छोटे डोंगर इलाके में हुई। इस मुड़भेड़ में १२ आदिवासी मारे गए। आदिवासियों के तीर-धनुष, टंगिया कहाँ तक अंग्रेजों के आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्रों के सामने टिकते। नेतानार गुन्डाधुर का इलाका था। यह गुन्डाधुर लाल कालेन्द्र सिंह का दाहिना हाथ था। उसका इलाका खूनी संघर्ष के लिए आतुर था। अलनार के वन में मरने-मारने को उद्धत आदिवासियों की एक बड़ी टुकड़ी २७ मार्च की रात्रि को विश्राम कर रही थी। वस्तर में मीर जाफर व जयचन्द्र की कमी नहीं थी। अंग्रेजों को गुप्त सूचना भेजी गई। रातोंरात सैनिक व सिपाही विप्लवकारियों को भून डालने की नियत से रवाना हुए। अलनार के वन में सुप्त, विप्लवकारियों पर आते ही गोलियों की बौछार प्रारंभ की गई। विप्लवकारियों ने हजारों की संख्या में तीर छोड़े। तीर, बंदूक की गोलियों का सामना कहाँ तक करते। २१ आदिवासी इस स्थल पर मारे गए, घायलों की संख्या सैकड़ों में थी।

इस विप्लव के बारे में पूरी रिपोर्ट तैयार करने का भार पोलिटिकल एजेंट इ० ए० डीब्रे को सौंपा गया। इनकी रिपोर्ट के अनुसार ३९ विप्लवकारी गोलीबारी से मारे गए। डीब्रे की रिपोर्ट अधूरी सूचनाओं पर आधारित थी। लोक-विश्वास के अनुसार इस विप्लव में मरने वालों की संख्या चार-पाँच सौ से कम नहीं थी। घायलों की संख्या हजारों में मानी जाती है। कोड़ों की मार सहने वाले विप्लवकारी जब अपने गाँव लौटते थे तब इनका वीरोचित स्वागत होता था।

प्रमुख विप्लवकारी नेताओं में लाल कालेन्द्र सिंह, रानी सुवर्ण कुँवर गुन्डा धुर, डेवरा धुर, जाकरी पेड्डा, रोरा पेड्डा, कोरिया माझी कुंवर बहादुर सिंह, मकुन्द देव माछमारा, मूरत सिंह बख्शी, बाला प्रसाद नाजीर, दुलार सिंह, बच्चू प्रसाद, सोमनाथ वैद्य की गणना

की जाती है।

प्रशासन की ओर से इस विप्लव को दबाने में साठ हजार रु० खर्च हुए। १८७६ ई० की भाँति इस अवसर पर भी पूरा व्यय-भार बस्तर रियासत पर डाला गया। किश्तों में यह राशि वसूली गई। जिन प्रमुख व्यक्तियों ने प्रशासन का साथ दिया उन्हें पुरस्कृत किया गया, पदवृद्धि की गई। जेलों में बन्द किए गए विप्लवकारियों पर मुकद्दमा चलाया गया। सात को फाँसी की सजा दी गई। जेल में ही घायल व बीमार २८ विप्लवकारियों का देहावसान हो गया। लगभग ८० विप्लवकारी रायपुर के केन्द्रीय कारावास में सजा भुगतने के लिए भेज दिए गए (एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट १९१०) राजमाता सुवर्ण कुँवर का निर्वासित अवस्था में ही रायपुर में निधन हो गया। लाल कालेन्द्र सिंह पहले रायपुर में ही फिर इलिचपुर में नज़रबंद रखे गए। विप्लव को इतनी कड़ाई से दबाया गया कि आज भी बस्तर के बड़े-बूढ़ों से १९१० के संघर्ष के बारे में कुछ पूछने पर उनके कान खड़े हो जाते हैं।

अध्याय—आठ

बस्तर रियासत—एक परिचय

स्थिति—

मध्य प्रांत के सबसे बड़े रियासतों में से एक बस्तर था। १७°४६' उत्तरी अक्षांस से २०°१४' उत्तरी अक्षांस के मध्य यह स्थित था। ८०°१५' से ८२° १' पूर्वी देशांस के मध्य यह फैला था। इसका कुल क्षेत्रफल १३,०६२ वर्गमील था। रियासत की उत्तर से दक्षिण लम्बाई १४६ मील और चौड़ाई पूर्व से पश्चिम तक १२८ मील थी। मध्य प्रांत के किसी भी रियासत से यह क्षेत्रफल की दृष्टि से दुगुना विस्तार वाला था (फ्यूडेटरी स्टेट्स गजेटियर, पृ० १५) बस्तर रियासत के अंतर्गत जगदलपुर के चारों ओर स्थित सात परगने, इन्द्रावती नदी के उत्तर में स्थित अठारह गढ़ और दक्षिण व पश्चिम में स्थित बारह जमींदारियाँ आती थी जगदलपुर के आसपास स्थित सात परगनों में ही प्रायः बस्तर से बाहर के आए लोग बसे थे (मैकजार्ज रिपोर्ट, २२ अप्रेल १८७६ ई०)

नामकरण—

रियासत का नामकरण 'बस्तर' कैसे पड़ा ? इसके सम्बंध में दो तथ्य रखे जाते हैं। दोनों का सम्बंध प्रारंभिक काकतीय शासक से है।

पहले तथ्य के अनुसार प्रारंभिक काकतीय शासक ने अपना अधिकांश समय इस अंचल में बांसतरी (बांस वृक्षों के नीचे) व्यतीत किया। उनके रहने-बसने के लिए उपयुक्त भवन नहीं था, इसलिए उन्होंने नव-विजित क्षेत्र का नाम बाँसतरी' रखा— यही बाँसतरी बाद में 'बस्तर' में परिवर्तित हो गया।

नामकरण के सम्बंध में दूसरा तथ्य इस प्रकार है। नए साम्राज्य की स्थापना के लिए निकले राजा अन्नमदेव के साथ उनकी गृहदेवी दन्तेश्वरी माई थी। देवी के निर्देशन में राजा आगे बढ़े, देवी पीछे-पीछे चली। देवी ने आदेश दे रखा था कि पीछे मुड़कर राजा न देखे। डंकनी-शंखनी नदी पार करते समय देवी के नुपुर में रेत भर जाने के कारण नुपुर की आवाज आनी बन्द हो गई। राजा ने सोचा देवी रुकने का इशारा कर रही है। राजा रुके और पीछे मुड़कर देखे। देवी क्रोध से आग-बबूला हो उठी। राजा ने स्पष्टीकरण देते हुए देवी से खूब अनुनय-विनय किया देवी ने आगे बढ़ने से तो इंकार कर दिया मगर वरदान स्वरुप अपना दैवी वस्त्र फैलाया। जितना भाग इस वस्त्र से ढंका, उसे उसने अन्नमदेव के सुपुर्द किया। देवी के वस्त्र से जुड़े इस अंचल का नामकरण वस्त्र' रखा गया। यही उच्चारण सुलभता के कारण बस्तर' हो गया। दोनों तथ्यों से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि इस अंचल का 'बस्तर' नामकरण काकतीय शासन के प्रारंभ से हुआ।

सीमावर्ती राज्य—

रियासत के चारों ओर स्थित भू-भागों में उत्तरी सीमा पर कांकेर जमींदारी और रायपुर जिला, पूर्व दिशा में वृन्दानवागढ़ जमींदारी, जयपुर और सबरी नदी, पश्चिम की ओर इन्द्रावती नदी और अहेरी जमींदारी प्रमुख थे (रिपोर्ट आन द डिपेन्डेन्सी आफ बस्तर, सी० ग्लासफर्ड, पृ० १)

प्राकृतिक रचना—

रियासत का भूतल बहुत ऊँचा नीचा है। समुद्र सतह से ऊँचाई में पर्याप्त अन्तर है। एक ओर बैलाडीला की पहाड़ियाँ हैं जो समुद्र-सतह से चार हजार फुट की उँचाई पर स्थित है, दूसरी ओर कुछ भाग ऐसे भी हैं जो समुद्र सतह से मात्र पाँच सौ फुट की उँचाई पर स्थित हैं। रियासत की मुख्य नदी इन्द्रावती है। इन्द्रावती और उसकी सहायक नदियाँ

ही मुख्यतः जल के स्त्रोत हैं। क्षेत्र पहाड़ी व पथरीली होने के कारण नहरों के लिए अनुपयुक्त है। खोलाव अर्थात सबरी नदी, दूसरी प्रमुख नदी है। यह नदी बहुत से पहाड़ों को फोड़ती हुई बही है अन्य नदियों की तुलना में काफी गहरी है इसलिए रियासत के लोग इसे खोलाव अर्थात खोह वाली नदी कहते है (बस्तर-भूषण पृ० ८) यह नदी वर्तमाग में मध्यप्रदेश और उड़ीसा की सीमा बनाती है। गुप्तेश्वर इसके तट पर स्थित प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल है। इस स्थल पर पानी व पत्थर की लड़ाई देखने योग्य हैं। राह रोकने वाले पत्थरों को अनवरत प्रहार कर नदी ने रास्ता निकाला। इस संघर्ष में पत्थर प्राकृतिक रुप से अनायास विभिन्न आकार पाए जो मनोरम है। नदी वह रही है— यह नीचे से आवाज आने पर ही अनुमान लगाया जाता है।

जनसंख्या–

क्षेत्रफल की दृष्टि से विस्तृत भू-भाग जनसंख्या की दृष्टि से न्यून था। १८९१ की जनगणना के अनुसार रियासत में ३ लाख १० हजार ४८० जनसंख्या थी (एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ बस्तर स्टेट फार द इयर १८९६) १९११ ई० की जनगणना जो १० मार्च १९११ ई० को कराई गई— के अनुसार रियासत में कुल ४ लाख ३३ हजार २६३ लोग थे (एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट फार द इयर, १९११) १९४१ ई० की जनगणना के अनुसार ६ लाख ३३ हजार ८८८ लोग थे (एन्वल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ बस्तर फार द इयर १९४३) इस प्रकार से हम स्पष्ट ज्ञात करते हैं कि रियासत की जनसंख्या में बहुत धीमी गति से वृद्धि हुई।

जन-जातियाँ–

बस्तर रियासत मुख्यतः आदिवासी बहुल–अंचल रहा। १९३१ ई० की जनगणना से पूर्व सभी आदिवासियों को गोड़ शीर्षक से गिना जाता था। १९३१ ई० में पहली बार विभिन्न जातियों को ७ अलग अलग शीर्षक देकर वर्गीकृत किया गया। सामाजिक दृष्टि से भतरा जाति नम्बर एक में आती है। संख्या की दृष्टि से बस्तर रियासत में मुरिया और माड़िया सबसे अधिक हैं। इसी कारण आम तौर पर बस्तर के सभी आदिवासियों के लिए 'मुरिया–माड़िया' सम्बोधन दे दिया जाता है। बस्तर रियासत की प्रमुख जन-जातियों में गोंड़, मुरिया, माड़िया, भतरा, परजा, हलबा, धुरवा की गणना होती थी गोड़ों में भी राजगोंड़ व मंत्री गोंड़

दो उपविभाग थे, मुरिया जन-जाति अपनी घोटुल संस्था के लिए चर्चित रही है। मुरिया कहते ही घोटुल के बारे में कौतुहल जागृत हो उठता है। ये घोटुल युवा-गृह है जहाँ मुरिया जन-जाति की युवा-युवतियाँ रात्रि काल में मनोरजन करते हैं। मुरिया समाज के आधारभूत तत्वों में यह घोटुल संस्था है। इसी संस्था के द्वारा मुरिया युवाओं को उनके कर्तव्यों का बोध कराया जाता है। जहाँ तक माड़िया जाति का सवाल है यह यहाँ की सबसे खूँखार जाति है। बस्तर में माड़िया जाति ही अधिक संख्या में हत्या व आत्म हत्या करती है। बस्तर की जन-जातियों में अबूझमाड़ियों का अपना एक पृथक अस्तित्व है। लगभग २४०० वर्ग कि० मी० क्षेत्र में फैले अबूझमाड़ के इलाके में बहुत कम जनसंख्या है। अबूझमाड़ का अर्थ है – अनजाना पहाड़ी भूमि (मध्यप्रदेश संदेश, जुलाई १९७८)

वन-सम्पदा—

रियासत बस्तर अपनी वन-सम्पदा के लिए चर्चित रहा है। यहाँ से लकड़ी मद्रास तक भेजी जाती थी। साल, सागौन, बीजा, हल्दू जैसी लकड़ियाँ बहुतायत से मिलती थी। अपनी सागौन लकड़ी के लिए यह पूरे भारत में प्रसिद्ध था। रियासत की आय का प्रमुख श्रोत वन था। सन् १८८६–८७ में रियासत की कुल आय २ लाख २३ हजार ९८८ रु० थी इसमें से ८६ हजार ४३३ रु० की आय केवल वनों से हुई थी। सन् १९२१ में रियासत की कुल आय लगभग ७ लाख रु० थी, इसमें से अढ़ाई लाख रु० से अधिक की आय वनों से हुई थी। रियासत के लिए ये वन भले ही आय के प्रमुख श्रोत रहे हों मगर जहाँ तक बस्तर के आदिवासियों का सवाल है ये वन उनकी संस्कृति की रक्षा में सहायक रहे। सन् १८९२ ई० से वन से निस्तार सुविधा व जानवरों के चराए जाने पर प्रतिबंध लगाने का क्रम प्रारंभ हुआ। वनों के आरक्षित किए जाने का विपरीत प्रभाव बस्तर के आदिवासियों पर पड़ा। वनवासी, वनस्पति और वन्य पशुओं के बीच की आपसी समरसता को यह आरक्षित वन व्यवस्था भंग करती है। आदिवासी प्रकृति-पुत्र होता है, प्रकृति माता के समान उसे पालती है, सेवा करती है, संरक्षण देती है। (व्ही० राघवैह, ट्राइबल रिव्होल्ट्स)

आवागमन व डाक व्यवस्था—

आवागमन और डाक-व्यवस्था ठीक नहीं थी। सड़क नहीं थे, इसी कारण सन् १८७६ ई० में विप्लव दबाने के लिए आने वाली पुलिस टुकड़ी को पैदल व घुड़सवारी कर आना पड़ा। विप्लव शाँत हो जाने पर डिप्टी कमिश्नर सिरोचा मैकजार्ज ने सड़कों की ओर रियासत का ध्यान आकृष्ट किया तब कहीं जाकर सड़क निर्माण का कार्य प्रारभ हुआ। भूमि उबड़-खाबड़ होने के कारण सड़क निर्माण पर लागत अधिक आती थी। चक्के वाली गाड़ी और पालकी ही आवागमन के साधन थे। (बस्तर-भूषण, पृ० २३) राजा रुद्रप्रताप देव की अल्प-वयस्कता के काल में शासन-सूत्र का संचालन दीवान या प्रशासक संभाले। इन्हीं वर्षों में सड़क निर्माण का कार्य गति पकड़ा। चारों दिशाओं में सड़क निर्माण की बड़ी-बड़ी योजनाएँ हाथों में ली गई। १८८६-८७ में रायपुर मार्ग पर कार्य प्रारंभ हुआ मगर तेलीन-घाटी की समस्या सामने थी (मेमो आन द एडमिनिस्ट्रेशन आफ बस्तर स्टेट ड्यूरिंग १८८६-८७) १९१० ई० तक यह मार्ग कार चलाने लायक बन गई थी। सन् १९११ ई० में जगदलपुर से चित्रकूट का मार्ग निर्माण पूरा हुआ (एन्वल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट १९११)

जहाँ सड़क ही न हो वहाँ डाक-व्यवस्था एक जटिल समस्या थी। १८७६ ई० तक डाक लाने-ले जाने का कार्य बेगार पद्धति से होता था। कोई राशि या वेतन डाक लाने-ले जाने वाले को नहीं दी जाती थी। मैकचार्ज ने इस ओर रियासत का ध्यान आकृष्ट कर, कुछ डाक-कर्मचारी रखने और नियमित डाक सेवा की व्यवस्था का सुझाव दिया। (मैकजार्ज रिपोर्ट, १८७६) मैकजार्ज की रिपोर्ट को महत्व दिया गया और डाक-व्यवस्था को नियमित करने का कार्य प्रारंभ किया गया।

अध्याय—नौ

रियासत बस्तर की प्रशासनीक व्यवस्था

बस्तर राजा १८५४ ई० से ब्रिटिश सर्वोच्चता के अंतर्गत आए। इससे पूर्व वे भोंसला के करद राजा थे। भोंसले बस्तर से वार्षिक कर प्राप्त करने तक ही अपने को सीमित रखते थे, यहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था में यथा-संभव वे हस्तक्षेप नहीं करते थे। बस्तर का राजा रियासत के सभी मामलों का अंतिम निर्णायक था। इसी तथ्य की ओर

डिप्टी-कमिश्नर रायपुर चार्ल्स इलियट का ध्यान आकृष्ट करते हुए रियासत के दीवान लाल दलगंजन सिंह ने कहा था— "बस्तर राजा के नागरिक व न्यायिक अधिकारों पर कभी भी, किसी भी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया गया है, अपनी प्रजा पर बस्तर राजा का पूर्ण अधिकार है।" सी० ग्लासफर्ड ने अपनी रिपोर्ट के पैरा० १७१ में इसका उल्लेख किया है।

बस्तर राजा की यह स्थिति अधिक दिनों तक बनी नहीं रह सकी। अंग्रेजों का हस्तक्षेप प्रशासन पर क्रमशः बढ़ता ही गया। विभिन्न प्रकार की संधियों के माध्यम से राजा के अधिकार कम से कम होते गए। राजा केवल नाम के लिए राजा रह गया विभिन्न शक्तियाँ दीवान को हस्तांतरित होती गई। राजा प्रशासन कार्यों में अपनी सहायता के लिए एक दीवान नियुक्त करता था। अपनी इच्छा से जिसे वह चाहता दीवान बना देता था। मराठा पराश्रितता के काल में केवल एक बार भोंसले शासक ने लाल दलगंजन सिंह को दीवान बनाने की अनुशंसा की थी जिसे बस्तर राजा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया था। बस्तर के प्रशासन पर अपनी पकड़ मजबूत करने के उद्देश्य से अंग्रेजों ने दीवान की नियुक्ति के मामले में हस्तक्षेप प्रारंभ किया। धीरे-धीरे स्थिति यह निर्मित हो गई कि वही व्यक्ति दीवान बन सकता था जिसे अंग्रेज चाहें। अंग्रेजों द्वारा नियुक्त करवाया गया दीवान गोपीनाथ १८७६ तक इतना अलोकप्रिय हो गया था कि उसे हटाने के लिए आदिवासियों को सशक्त आंदोलन करना पड़ा था। अंग्रेज इससे कुछ समय के लिए सचेत हुए मगर फिर वही ढर्रा चला।

अंग्रेजों द्वारा नियुक्त किया गया दीवान इतना शक्तिशाली होता था कि रियासत का पूरा बजट उसी की मर्जी के अनुसार बनता था। राजा को अपने व्यक्तिगत खर्च के लिए दीवान के मार्फत ही राशि लेनी पड़ती थी। पोलिटिकल एजेंट छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरीस मि० बेरी ने अपने ४ सित० १८८७ ई० के पत्र में बस्तर के राजा को स्पष्ट लिखा है कि वे एक हजार रुपए मासिक से अधिक राशि व्यक्तिगत खर्च के लिए न लें। इससे अधिक की आवश्यकता हो तो दीवान के मार्फत पोलिटिकल एजेंट से पूर्व अनुमति प्राप्त की जाय।

सन् १८६२ ई० में दीवान लाल दलगंजन सिंह की मृत्यु हुई। नए

दीवान के रुप में राजा ने अपने अधर्मजभाई कुँवरसिंह को नियुक्त किया। इस संदर्भ में किसी प्रकार की राय या अनुमति राजा ने डिप्टी-कमिश्नर सिरोचा से नहीं ली। डिप्टी-कमिश्नर ने भी इस मामले में हस्तक्षेप नहीं किया मगर अपने उच्चाधिकारियों को पत्र लिखकर उसने जानना चाहा कि क्या राजा इस प्रकार नियुक्ति कर सकता है (डिप्टी-कमिश्नर का ज्युडिसियल पत्र क्रमांक ४९५ दिनांक १५ जून १८६३ ई०)

२२ अप्रेल १८८६ ई० को मि० कृष्णा राव को बस्तर राजा से एक सनद दिलवाया गया और उसे दीवान पद पर प्रतिष्ठित किया गया। रियासत के बेहतर प्रशासन के लिए उसे उत्तरदायी बनाया गया। पूर्ण नागरिक, न्यायिक व राजस्व सम्बंधी अधिकार उसे सौंपे गए। राजस्व कागज-पत्रों पर ही राजा के हस्ताक्षर व सील की आवश्यकता रखी गई। (पोलिटकल एजेंट छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरीस का पत्र क्रमांक १२८५/- दिनांक ९-८ १८८७ ई०)

सन् १८९१ ई० में राजा भैरमदेव की मृत्यु हुई। उत्तराधिकारी रुद्रप्रतापदेव की अवस्था मात्र ६ वर्ष की थी लम्बे समय तक दीवान को ही शासन-सूत्र संभालना था। ऐसी स्थिति में १८९६ ई० में पहली बार एक अंग्रेज जे० एल० फैगन को एडमिनिस्ट्रेटर का पद देकर बस्तर में नियुक्त किया गया। 'बस्तर उस समय बिल्कुल ही श्रीमान पोलिटिकल एजेंट साहेब के मातहत नहीं समझा जाता था" (बस्तर-भूषण, पृ० १४४) इसके पश्चात् अनेक अंग्रेज रियासत में एडमिनिस्ट्रेटर बने, इनमें से प्रमुख थे— सर्वश्री जी० मे. लैघार्न डब्ल्यू० टकर, डब्ल्यू० व्ही ग्रीग्सन, इ० एस० हाइड, ए० एन० मिचेल आदि।

१८५४ ई० में ब्रिटिश सर्वोच्यता के अंतर्गत बस्तर आया इसके निरीक्षण, नियंत्रण, निर्देशन का अधिकार अपर गोदावरी जिले के डिप्टी-कमिश्नर को दिया गया। बाद में यह रायपुर के पोलिटिकल एजेंट के अधीन हुआ। नव० १९३६ से यह छत्तीसगढ़ स्टेट एजेंसी के अंतर्गत आया।

प्रशासन का सर्वोच्य अधिकारी राजा था उसके नीचे दीवान था। दीवान के नीचे अनेक प्रशासनिक एजेंसी थी। राजस्व की वसूली, अपराधियों की पकड़, कानून व व्यवस्था स्थापित करने के लिए कुछ गढ़ों के ऊपर कामदार नामक पदाधिकारी था। यह क्षेत्र का मैनेजर था,

लिखना-पढ़ना हिसाब रखना जानता था। अपने दायित्वों के लिए वह दीवान के सम्मुख उत्तरदायी था। किसानों से कुछ अनाज और रियासत से कुछ राशि (१० रु० से अधिक नहीं) वह पारिश्रमिक रुप में प्राप्त करता था। कामदार को सहायता पहुँचाने के लिए नेगी नामक पदाधिकारी होता था। कुछ गाँव उसके अधिकार-क्षेत्र में आते थे। बड़े क्षेत्र के नेगी को सहायता पहुँचाने के लिए हिकमी नामक अधिकारी रखा जाता था। राजस्व के रुप में प्रतिहल या प्रति कुदाली चार आना भू राजस्व लिया जाता था। इसकी वसूली एक समस्या थी। अधिकारियों के लेखों की नियमित जाँच पड़ताल नहीं होती थी। सी० ग्लासफर्ड ने १८६२ ई० में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में यह सारा वर्णन किया है।

रियासत तहसीलों में बंटा था। जगदलपुर, डोंगर, प्रतापपुर, नारायनपुर, भेजी ये पाँच तहसीलें थी। सन् १८८६-८७ में बीजापुर और दन्तेवाड़ा दो नए तहसीलों का गठन किया गया (मेमो आन द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द बस्तर स्टेट ड्यूरिंग १८८६-८७) १९३३ ई० से पटवारी हल्का-बंदी व्यवस्था लागू की गई। पटवारियों के लिए अपने हल्कों में रहना अनिवार्य किया गया (रिपोर्ट आन द एडमिनिस्ट्रेशन आफ बस्तर स्टेट फार १९३४) कोंडागाँव और अंतागढ़ को भी तहसील बनाया गया।

गवर्नर जनरल के एजेंट के आदेशानुसार नवम्बर १९३६ ई० में म्युनिसिपल कौंसिल का गठन जगदलपुर में किया गया। जलपूर्ति व विद्युतपूर्ति का कार्य उसे मुख्यतः सौंपा गया।

ब्रिटिश सर्वोच्यता के अधीन आए बस्तर की प्रशासनिक व्यवस्था का केन्द्र दीवान था। १८९१ से १९०८ ई० के प्रारंभ तक अल्प-वयस्कता के कारण एडमिनिस्ट्रेटर ही सर्वेसर्वा थे। १९१० ई० के विप्लव को आधार बनाकर शक्ति का केन्द्रीय करण दीवान एडमिनिस्ट्रेटर के हांथों किया गया। १९२१ ई० से रियासत सरकारी व्यवस्था में रहा जो १९४७ ई० तक चला। इस प्रकार से १८५४ से १९४७ तक चलने वाले ब्रिटिश सर्वोच्यता के युग में बस्तर रियासत में एडमिनिस्ट्रेटर, दीवान, सुप्रिन्टेन्डेन्ट की ही तूती बोलती थी। राजा नाम-मात्र का प्रमुख रहा।

रियासत की अपनी पुलिस व्यवस्था थी। सन् १८८६-८७ में जहाँ कुल मिलाकर ५३ कर्मचारी थे वही सन् १९३६ ई० के आते-आते संख्या बढ़कर २७० हो गया।

- महत्वपूर्ण स्थल -

ग्राम कालीपुर— पूर्व पाषाण–कालीन उपकरण प्राप्त

बिन्ता, भाटेवाड़ा, गढ़चंदेला, चित्रकूट — पाषाण-कालीन उपकरण

आलोर ग्राम — शैलाश्रय व शैलचित्र

पोड़ागढ़ — नलवंशी राजाओं के शिलालेख

एडेंगा — नलवशी राजाओं के सिक्कों की निधि

पुष्करी — नल राजाओं की राज-धानी

चक्रकोट, भ्रमरकोट — नागवंशी काल में इस अंचल का नाम

वारसूर — राजधानी स्थल, मंदिर के लिए प्रसिद्ध

भोगवती — नागवंशी राजाओं की राजधानी स्थल ज्ञात नहीं

टेमरा — सती शिलालेख प्राप्त, १३२४ ई० की तिथि अंकित

एरांकोट — शिलालेख के लिए प्रसिद्ध,
नागवंशी शासकों के प्रारंभिक शिलालेख

कुरुसपाल — नाग शासकों की राजधानी, शिलालेख प्राप्त हुए हैं।

राजपुर — अल्प-कालीन राजधानी, ताम्रपत्र प्राप्त

नेतानार — गुँडाधुर का गाँव

मरदापाल — लाल कालेन्द्र सिंह का निवास स्थल

वस्तर — कुछ काल तक राजधानी रही

दन्तेवाड़ा — दन्तेश्वरी माई के मंदिर के लिए प्रसिद्ध

छोटे डोंगर — काकतीयों की जुनियर ब्रांच की राजधान

नारायणपाल — बारहवीं शताब्दी में निर्मित मंदिर

अध्याय—दस

बस्तर का महापर्व दशहरा

भारत वर्ष उत्सवों का देश है। आये दिन यहां उत्सव मनाए जाते हैं। इन उत्सवों की श्रृखंला में दशहरा उत्सव का विशेष महत्व है। लगभग सारे भारत में यह मनाया जाता है, परन्तु जहां जहां रियासतें थी वहां-वहां यह और भी अधिक धूमधाम से मनाया जाता था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी इन रियासतों में शासकीय सहयोग से उसी उत्साह के साथ यह महापर्व दशहरा मनाया जाता है।

आदिवासी बहुल बस्तर अंचल में भी यह उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। सामान्यतः दशहरा राम-रावण के युद्ध से कुछ ऐसा जुड़ गया है कि उससे भिन्न उसकी कोई कल्पना नहीं की जा सकती। कभी आए होंगे राम दंडक वन में लेकिन फिलहाल जहाँ तक बस्तर के आदिवासी जीवन को देख पाते हैं वहां हमें उनके जीवन में शाक्त भाव ही अधिक दिखाई देता है। कहा जा सकता है कि बस्तर का आदिवासी वैष्णव नहीं शाक्त ही है। इसी लिए माई दन्तेश्वरी जो शक्ति की देवी है इस महापर्व में विशेष महत्व पाती है। राम के विजयोत्सव का रुप भी इसे दे दिया जाता है। दशहरा मूलतः क्षत्रियों का उत्सव है मगर बस्तर के आदिवासियों ने अपने राजा के उत्सव को अपना उत्सव मान लिया। जब एक बार इसे मान लिया तो हमेशा के लिए मान लिया। दशहरा उत्सव में बस्तर का आदिवासी तन-मन-धन से सहयोग देता है। संसार में सबसे अधिक दिनों तक चलने वाला पर्व बस्तर का दशहरा है। सावन माह की अमावस्या को वन से लकड़ी का एक तना लाया जाता है और इसी दिन से उत्सव की तैयारी प्रारंभ हो जाती है। उत्सव लगभग ७५ दिनों तक चलता है। दशहरा उत्सव का धूम मुख्यतः चार दिनों तक रहती है। पं० केदारनाथ ठाकुर के शब्दों में—"दशहरा के समय जगदलपुर मानो इन्द्रपुरी बन जाता है। कलकत्ते में जिस प्रकार नवरात्रि की धूमधाम घर-घर मच जाती है, उससे बढ़कर बस्तर में होता है" [बस्तर भूषण. पृ० १०५]

बस्तर के महापर्व दशहरा की एक प्रमुख विशेषता व आकर्षण का केन्द्र वृहदाकार रथ होता है। यह रथ या कहा जाय महारथ पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ से बस्तर में बनने लगा है। इस वृहदाकार रथ में दन्तेश्वरी माई का छत्र लेकर उसका पुजारी प्रतिष्ठित होता है। पहले

राजा ही इस पर बैठता था क्योंकि वही दन्तेश्वरी का प्रमुख पुजारी माना जाता था। बाद के वर्षों में रथारुढ़ होने के प्रश्न पर राजपरिवार में विग्रह की स्थिति आने पर व्यवस्था दी गई कि जगदलपुर स्थित दन्तेश्वरी मंदिर का प्रमुख पुजारी ही रथारुढ़ होगा। विवाद का पटाक्षेप हुआ और अब यही व्यवस्था जारी है।

माई दन्तेश्वरी की महत्ता संपूर्ण बस्तर में व्याप्त है। इस महत्ता के स्थापित होने में एक लम्बा समय लगा है। बस्तर के राजा पांडुवंश के माने जाते हैं। जब तक ये दिल्ली में रहे इनकी इष्टदेवी दिल्लेश्वरी थी, जब ये मथुरा आए तो इष्टदेवी वहीं रही मगर नाम परिवर्तित होकर 'भुवनेश्वरी' हो गया। जब ये दक्षिण भारत में स्थित वारंगल आए तो देवी वहीं रही मगर नाम परिवर्तित होकर 'मानकेश्वरी' हो गया और अन्त में जब अन्नमदेव बस्तर आए [चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ में] तब साथ आयी, देवी का नाम 'दन्तेश्वरी' हो गया। इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी से दन्तेश्वरी माई बस्तर राजवंश की इष्ट देवी रही है [लेफ्टिनेंट कर्नल इलियट की रिपोर्ट मई १८५६, पैरा ११]

अन्नमदेव जब बस्तर आए तो उनके सामने अनेक समस्याएं थी। वे यहां की आदिवासियों की बर्बर-प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना चाहते थे। आस्था का कौन सा बिन्दु उन्हें सौंप दिया जाय कि वे हारी थकी घड़ियों में जीने की शक्ति पा सकें— इसका एक निदान अन्नमदेव ने निकाला और माता दन्तेश्वरी की लोक जीवन में सार्वजनिक प्रतिष्ठा स्थापित की। पश्चात वर्ती राजाओं ने प्रयास करके आदिवासियों के मन मस्तिष्क में दन्तेश्वरी माई की धाक स्थापित कर दी, दन्तेश्वरी देवी आदिवासियों की भी अधिष्ठात्री हो गई। आज यह स्थिति निर्मित हो गई है कि उन्हें सारे संसार में सबसे अधिक भय माई दन्तेश्वरी की अप्रसन्नता का ही है। आदिवासियों ने जब राजा की इष्टदेवी को अपना मान लिया तब देवी से संबंधित सभी उत्सव भी आदिवासियों के हो गए।

बस्तर का महापर्व दशहरा धार्मिक राजनीतिक एवं सामाजिक भाव-धारा की त्रिवेणी रही है। बस्तर के राजा की तीन हैसियत थी— 'माटी का पुजारी' होने के कारण वह धार्मिक नेता था, रियासत का स्वामी होने के कारण वह राजनीतिक प्रमुख था और समाज का सबसे

समादृत पुरुष तो वह था ही। जहाँ तक दशहरा के अवसर पर रथारुढ़ होने का प्रश्न था राजा 'माटी के पुजारी' के रुप में रथारुढ़ होता था—राज-प्रमुख की हैसियत से नहीं। यही कारण है कि राजा की उपाधि छीन लिए जाने पर भी प्रवीरचंद्र भंजदेव ही दशहरा के अवसर पर रथारुढ़ होते थे। आदिवासियों के बीच 'माटी के पुजारी' की उसकी हैसियत बराबर बनी हुई थी। उत्सव का प्रारंभ जब से होता था राजा अपना राजनैतिक चोला उतार फेंकता था। दन्तेश्वरी माई का प्रमुख पुजारी का स्वरुप प्रखर हो जाता था। जब तक उत्सव चलता रहता राजा राजनैतिक प्रमुख कम, धार्मिक प्रमुख अधिक रहता था।

विघटन को रोकने के लिए एकता के सूत्रों की सूत्रों को खोज अनिवार्य है। जिस प्रकार से आदि-शंकराचार्य ने भारत की चारों दिशाओं में अपने पीठों की स्थापना की, उसी प्रकार बस्तर के शासकों ने अपने राज्य में दन्तेश्वरी माई के कई पीठ स्थापित किए। लगभग हरेक गांव में माई के प्रतीक स्वरुप मावली देवी स्थापित है। इसी कारण बस्तर के आदिवासियों में धार्मिक एकता आ सकी। चाहे किसी भी क्षेत्र का आदिवासी हो वह दन्तेश्वरी माई को अपना आराध्य मानता है। अब तो सरकारी कर्मचारियों-अधिकारियों में भी यह बात घर करने लगी है कि स्थानाँतरण पर आते जाते दन्तेश्वरी के दर्शन करने चाहिए मावली देवियों के छत्र ले-लेकर बस्तर के सुदूर अंचलों से पुजारी भक्तों के साथ साथ जगदलपुर आते हैं। छत्रों का सम्मेलन सा हो जाता है। माई दन्तेश्वरी का मूल मंदिर जगदलपुर से ९५ कि मी. दूर स्थित दंतेवाड़ा नामक स्थान में है। पं० केदारनाथ ठाकुर ने १९०८ ई० में लिखा है 'दशहरा के वक्त माई की डोली जगदलपुर ले जाते हैं। मूर्ति के बदले में नया कपड़ा धोती वगैरह को मोड़कर तथा मूर्ति बनाकर चंदन का लेप कर देते हैं अर्थात भीतर कपड़ा ऊपर चंदन से ढंका रहता है। उसी मूर्ति को तुलसी, पारिजात, बेल, गुलाब, चंपा वगैरह नाना प्रकार के फूल पहनाते हैं। डोली फूलों से ढंपी रहती है। डोली के भीतर फूल हो फूल ऊपर तक भरा रहता हैं। मूर्ति फूल के भीतर रहती है। दन्तेवाड़ा से डोली तृतीया को नवरात्रि के लिए यात्रा करते हैं" [बस्तर भूषण पृ० ९९] इस कपड़े के मूर्ति के साथ दन्तेवाड़ा की दन्तेश्वरी देवी का छत्र भी जगदलपुर ले जाया जाता है। यह डोली जब

जगदलपुर के निकट पहुंचता है तो नगर के गणमान्य व्यक्ति, राजनेता, प्रमुख अधिकारी इसका परघाव करते हैं। यह 'मावली परघाव' कहलाता है। पहले राजा साहब खुद आगे बढ़कर, नंगेपाव डोली को कंधा देकर कुछ दूर ले जाते थे। मावली परघाव को काफी भीड़ जमा होती है। ग़ीदम रोड पर स्थित नाके के पास यह कार्यक्रम होता है।

वस्तर में रियासत काल से दशहरा का यह महापर्व मनाया जाता रहा हैं। "पुरुषोत्तम देव महाराज ने जगन्नाथ जी [पुरी] जाकर बहुत कुछ द्रव्य तथा रत्न इत्यादि चढ़ाये और रथपति की उपाधि लेकर वस्तर आये तब से रथ उत्सव मनाया जाता है" [वस्तर भूषण पृ० १४०] राजा पुरुषोत्तम देव का सिंहासनारोहण सन् १४०८ ई० में हुआ था। इस प्रकार पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में इस दशहरा उत्सव का प्रारंभ वस्तर में हुआ। तब से लेकर आद्यतन यह उत्सव पूर्ण धूम-धाम से मनाया जाता है। राजाओं के प्रिव्हीपर्स बन्द कर दिए जाने और राजाओं की आमदनी घट जाने की वजह से दशहरा उत्सव फीका न रहे इस निमित्त मध्यप्रदेश शासन बड़ी उदारता से उत्सव संचालन हेतु अनुदान देती है। शासकीय-अशासकीय लोगों की एक 'वस्तर दशहरा समिति' का गठन किया जाता है. वही समिति पूरी व्यवस्था करती है। पिछले कुछ वर्षों से वस्तर से निर्वाचित लोक-सभा सदस्य इस समिति के अध्यक्ष पद ग्रहण करते रहे हैं।

श्री वसंतलाल झा लिखते हैं— 'यद्यपि राजा [पुरुषोत्तम देव] को १६ चकों का रथ देने का आदेश हुआ था किन्तु राजा ने उसमें से चार चक जगन्नाथ जी को दे दिए और तब से चार चकों के रथ पर गोंचा के समय जगन्नाथजी की शोभा-यात्रा प्रतिवर्ष जगदलपुर में निकलती है। बचे हुए १२ चकों का रथ उन्होंने अपनी इष्ट-देवी दन्तेश्वरी को दिया। कहा जाता है कि पहले १२ चकों का ही रथ चलता था किंतु उसे चलाने में असुविधा होने के कारण आठ और चार चकों के दो रथ बनाए गए और तब से दशहरे के उत्सव में दो रथ चलाये जाते हैं। [लेख इन्द्रावती' में पृ० १००]

दशहरा उत्सव के प्रमुख कार्यक्रमों में 'काछन गादी' प्रमुख है। काछन याने कांटा और गादी याने गद्दी। कांटों की सेज पर से काछन देवी एक महार कन्या पर सवार होकर दशहरा मनाने की स्वीकृति देती

है। प्रतिवर्ष अलग-अलग महार कन्या पर यह देवी आरुढ़ होती है। यह उत्सव कुंवार माह की अमावस्या के दिन आयोजित होता है यह 'काछन गादी' जगदलपुर में बस स्टैंड से पथरागुड़ा जाने के मार्ग पर स्थित है। काछिन देवी की गद्दी भी इसे कहा जाता है। रियासत काल में राजा यहीं पर देवी से दशहरा मनाने की अनुमति प्राप्त करता था। छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेट्स में वर्णन है 'दशहरा उत्सव का विशेष उल्लेखनीय तत्व जैसा कि दीवान पंडा बैजनाथ ने बताया है- रियासत के जमींदारों व अन्य प्रमुख व्यक्तियों की उपस्थिति में राजा रियासत की व्यवस्था का औपचारिक रुप से भार दीवान को सौंप देता था। यह उत्सव काछिन गुड़ी में कुंवार के अमावस्या की संध्या को संपन्न होता है" [छत्तीसगढ़ फ्यूडेटरी स्टेट्स १९०९ ई० का प्रकाशन, पृ० ४३] आजकल दन्तेश्वरी का प्रमुख पुजारी काछिन देवी से यह अनुमति प्राप्त करता है। बस्तर संभाग के प्रमुख अधिकारियों में से कोई एक कार्यक्रम की अध्यक्षता करता है। लाला जगदलपुरी ने ठीक लिखा है— 'हरिजनों की देवी को बस्तर के भूतपूर्व राजाओं द्वारा इस प्रकार प्राथमिक सम्मान देना इस बात की पुष्टि करता है कि बस्तर के चालुक्यों (?) की दृष्टि में हरिजन अस्पृश्य नहीं थे" [बस्तर का महापर्व दशहरा लेख युगधर्म रायपुर दिनांक ३०-९-१९७९ ई०]

प्रसिद्ध समाज शास्त्री इन्द्रजीत सिंह ने लिखा है—"महार बस्तर में समाज के अति-आवश्यक सदस्य माने जाते हैं, इतनी अधिक आवश्यकता उनको है कि बस्तर में दशहरा उत्सव के समय उन्हें एक महत्वपूर्ण कार्य संपादित करना होता है। कुंवार माह के पन्द्रहवें दिन ७-८ वर्ष की महार लड़की फूलों से सजाकर काछिन के मन्दिर ले जायी जाती है। वहां एक 'मिमिक फाइट' उसके और तेली के मध्य होता है। लड़की अचेत हो जाती है। उसे काँटों के सेज पर सुलाया जाता है। पूरे समय में राजा मंदिर में रहता है, पुजारी से कहता है कि देवी से दशहरा शुभ होने की कामना के लिए प्रार्थना करे। लड़की होश में आ जाती है तब प्रार्थना की जाती है, अपने गले से एक माला निकाल कर पुजारी को देती है। वह भविष्यवाणी भी करती है कि दशहरा के सभी संस्कार व उत्सव अच्छ ढंग से सम्पन्न होंगे। इस प्रकार महार को एक विशेष पार्ट अदा करना होता है [द. गोडवाना एड द गोंड्स पृ० १२८]

आपसी सहयोग से एक विशालकाय रथ के निर्माण का कार्य एक चुनौती के रुप में सामने रहता है। एक बकरे की बलि देकर रथ निर्माण का कार्य प्रारंभ होता है। झाड़ उमरगांव की संवरा जाति पीढ़ी-दर-पीढ़ी से रथ निर्माण का कार्य करती आ रही है। रथ निर्माण के पश्चात् जब ये गांव लौटते हैं तब स्नान व पूजा करने के पश्चात् गांव में घुस पाते हैं। रथ निर्माण के लिए आए आदिवासियों के रहने-बसने व भोजन की व्यवस्था शासन की ओर से की जाती है। रथ के लिए लकड़ी लाने का कार्य भी अलग-अलग गाँवों के जिम्मे है। वे ही जंगल से लकड़ी काटते है और काट छिल कर रथ के उपयुक्त बनाते हैं और जगदलपुर लाते हैं। फारा, खब की लकड़ी, चाक की लकड़ी अलग-अलग गांव के लोग लाते है। रथ निर्माण के लिए कोई बढ़ई नियुक्त नहीं किया जाता सब काम आदिवासी अपने परम्परागत औजारों से कर लेते हैं बिना किसी प्रतिदान के ये सब काय श्रमदान द्वारा सम्पादित होता है। इस विशालकाय रथ [जो दो मंजिले मकान की ऊँचाई का होता है] की मजबूती उल्लेखनीय है। इसके निर्माण में लोहे का प्रयोग नहीं के बराबर होता है। लकड़ी को लकड़ी से जोड़ने का कार्य लोहा नहीं, लकड़ी की खूंटिया करती हैं। रथ इतना भारी रहता है कि बड़े-बड़े रस्सों की सहायता से ४-५ सौ आदिवासी इसे खीच पाते हैं। रथ खींचने का काय माटा माझी, किलेपाल के माड़िया ही करते हैं। ये इसे अपना विशेषाधिकार मानते हैं और दूसरों को रथ छूने भी नहीं देते। अपना ही राशन-पानी के साथ वे आते हैं और दो तीन दिनों तक रुकते हैं। रथ सजावट का कार्य बीरेनपाल ग्राम के लोग करते हैं। रथ जब निर्मित हो जाता है तब बकरे की बलि चढ़ाकर ट्रायल लिया जाता है।

भौतिकता के इस युग में हजारों की संख्या में अपना सारा कार्य छोड़कर बस्तर के आदिवासियों का माई के उत्सव के लिए अपना एक माह से अधिक का समय देना उनकी गहरी धार्मिकता का प्रतीक है।

आश्बीन शुक्ल एक को कलश स्थापना एवं ब्राह्मणों की मंडली द्वारा संकल्प पाठ से नियमित कार्यक्रमों की शुरुआत होती है इसी दिन 'जोगो बैठाई' का रस्म होता है। जगदलपुर के सीरासार चौक स्थित भवन में जमीन में लगभग २-३ फुट गड्ढा खोदा जाता है, लगभग ४ फुट लंबाई-चौड़ाई होती है। इसी गड्ढे में हलबा जाति का एक जोगी

बैठता है। वह दशहरा उत्सव की समाप्ति तक योगासन में बैठा उत्सव की सफलता की कामना करता हैं। इस बीच वह फलाहार व दुग्धाहार ही लेता है। उत्सव के दिनों में श्रद्धालु जन इस योगी के दर्शन हेतु आते रहते हैं। आमाबाल गांव का एक व्यक्ति आजकल जोगी के रुप में बैठता है।

'जोगी-बैठाई' रस्म के दूसरे दिन से अर्थात कुंवार शुक्ल २ से रथ परिक्रमा प्रारम्भ होती है। यह रथ पुष्प सज्जा से युक्त रहता था इसलिए फूल रथ कहलाता था। पहले वस्तर रियासत के राजा पाँच दिनों तक इस पर सवार होते थे। प्रत्येक दिन अलग-अलग वेश धारण करते थे। पहले दिन नीला, दूसरे दिन लाल, तीसरे, चौथे, पांचवें दिन भी यही लाल वस्त्र महाराज धारण करते थे। नवमीं तिथि को जोगी-उठाई रस्म अदा की जाती है। उसी दिन मावली परघाव होता है। इसी दिन दन्तेश्वरी माई से प्राप्त तलवार की पूजा की जाती है।

कुंवार शुक्ल १० एवँ ११ को ८ पहियों वाला बड़ा रथ परिक्रमा के लिए लाया जाता है। विजयादशमी को जब रड़ा रथ परिक्रमा करके आता था तब उसके सामने एक भैंस की बलि दी जाती थी। आजकल यह प्रथा समाप्त कर दी गई है। विजयादशमी को बड़ा रथ जब परिक्रमा के पश्चात् रखा जाता है तब आदिवासी [भतरा जाति] रथ को चुराकर राजप्रासाद से मीलभर दूर स्थित कुम्हडाकोट ले जाते हैं। यही राजा देवी को नया अन्न चढ़ाकर प्रसाद रुप में इसे खाते थे। कुंवार तिथि ११ को रथ वापस लाया जाता है। पहले इस कुम्हड़ाकोट में भी एक भैंस को बलि दी जाती थी आजकल नहीं दी जाती।

कुंवार शुक्ल १२ को पुनः काछन यात्रा की जाती है। उत्सव निर्विघ्न समाप्ति पर यह कृतज्ञता ज्ञापन होता है। इसी संध्या 'मुरिया दरबार' लगता है जो बस्तर दशहरा की अपनी विशेषता है। यह दरबार वास्तव में 'बस्तर की संसद' होती है। अंग्रेजों के काल में ऐसा दरबार अन्य रियासतों के राजा भी लगाते थे मगर इन दरबारों का लक्ष्य होता था जनता से भेंट लेना और बदले में जनता के बीच अपने वैभव का उन्मुक्त प्रदर्शन कर जनता के मन में भीतर-भीतर राजसत्ता के प्रति वफादारी के संस्कार पैदा करना। बस्तर के इस दरबार की विशेषता थी शासक व शासित के मध्य खुला विचार-मंथन। माझी मुखिया

अपने क्षेत्रों की समस्याएं राजा के सामने रखते थे और राजा उनका निदान करता था। राजकीय अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतें भी इस अवसर पर की जाती थी। सताने वालों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जाती थी राजा अपने एक वर्ष के प्रशासन की सफलता-असफलता की जानकारी प्राप्त करता था। आज भी परम्परा निर्वाह के लिए यह दर वार लगाया जाता है। प्रमुख राजनेता अध्यक्षता करते हैं और क्षत्र के माझी-मुखिया अपनी शिकायतें व मांग प्रस्तुत करते हैं। इसी के साथ गांव-गांव से आए देवी-देवताओं उनके छत्रों की विदाई होती है। आश्विन शुक्ल १३ को मावली माता की विदाई की जाती है।

श्री वसंतलाल झा ने ठीक ही लिखा है— "दशहरा द्वारा आर्य संस्कृति और आदिवासी संस्कृति के मिलन का अत्यंत सुन्दर दृश्य उपस्थित किया गया और यह कार्य वस्तर में अत्यंत प्रभावकारी ढंग से हुआ। आदिवासी जनता ने हिन्दू देवी देवताओं को मान्यता प्रदान की तथा हिन्दूओं ने आदिवासी देवी-देवताओं और विश्वासों का सम्मान किया। इसी सांस्कृतिक सामन्वय के फल स्वरुप वस्तर में ५०० वर्षों तक विना किसी बड़ी सेना के सुचारु रुप से राज-काज चलता रहा" [लेख इन्द्रावती पृ० १०४]

दशहरा उत्सव की समाप्ति पर वस्तर के आदिवासी जगदलपुर से नई चेतना, जागृति व आत्म स्फूर्ति लेकर अपने-अपने क्षेत्रों में लौटते हैं। माई दन्तेश्वरी के प्रति अपना सम्मान प्रकट कर लौटता आदिवासी आश्वस्त रहता है कि माई वर्ष भर उसका कल्याण करती रहेगी। दशहरा के अवसर पर उपस्थित भीड़ के आधार पर आदिवासियों की मनः स्थिति का आकलन किया जा सकता है। अधिक भीड़ लोगों की खुशी को दर्शाने वाला है। भीड़ को कमो चिन्ता बढ़ाने वाला होता है। आदिवासी मनः स्थिति को मापने वाला एक प्रकार का मीटर है यह वस्तर का महापर्व दशहरा।

अध्याय—ग्यारह

मुर्गा लड़ाई—बस्तर में

कब सोचा था कि सुबह को बांग देकर दिन हो जाने की घोषणा करने का मुगालता पालने वाला मुर्गा एक जुझारु योद्धा के रुप में सामने आ खड़ा होगा। मुर्गे के नाम पर तो हम अपने मुर्गे की तीन टांगों की ही रट लगाए हुए थे लेकिन आज सचमुच उसकी तीन टाँगे थी दो टांगे हाड़-मांस की और तीसरी, टांग में बंधा लोहे की काती (छोटी छुरी)। काती बंधा मुर्गा, तीन टांग वाला मुर्गा नहीं तो और क्या है ?

यह कौन है जो सामने लम्बे डग भरता, मस्त और स्फूर्त मुद्रा में चला आ रहा हैं? जो! यह बस्तर का एक आदिवासी है, जिसकी गोद में मुर्गा है— पुत्र स्नेह का अधिकारी है यह मुर्गा, शील्ड थामे विजयी खिलाड़ी की मनः स्थिति वाला है यह आदिवासी, यह आदिवासी, मुरिया, माड़िया, भतरा, धुरवा, हल्वा कोई भी हो सकता है समूचे बस्तर में लड़ाकू मुर्गा जो 'गाजा मुर्गा' कहलाता है, एक सम्पत्ति माना जाता है।

खेती के लिहाज से बस्तर आम तौर पर एक फसली है। धान के फसल के बाद फुर्सत ही फुर्सत। इधर कार्तिक आया और उधर मुर्गा लड़ाई का जैसे सीजन शुरु हो गया, जेठ तक यह सीजन चलने वाला है। हजार पाँच सौ की भीड़ समा लेने वाला छायादार वृक्षों से युक्त कोई भी सपाट मैदान देखते ही देखते रणभूमि का रुप ले लेता है, जिसमें जुझारु योद्धा के रुप में मुर्गे अपने हथियार काती को लेकर उतारे जाते हैं।

मुर्गा लड़ाई की प्रथा बस्तर में ही नहीं फारस, चीन, इंग्लैंड, अमेरिका सभी देशों देशों में प्रचलित थी। मुर्गे जब कभी एक साथ पड़ जाते हैं तब वे एक दूसरे को अपने खांग (पैर पर ऊगे काँटे) से आहत करने की चेष्टा करते हैं। बहुत संभव है इसे देखकर ही मनुष्य के मस्तिष्क में यह बात आई हो कि यदि मुर्गे के पैर में कोई धारदार चीज बांध दी जाए तो संघर्ष का मजा ही दूसरा हो जाय। 'इसका ठीक पता नहीं कि कब से मुर्गो के खांगो में धातु के काटे बांधे जाने लगे, परन्तु चांदी फिर लोहे और अन्त में इस्पात के कांटे लगाने की प्रथा चल निकली" (हिन्दी विश्वकोष खंड ३ पृ० ५६)

बस्तर के आदिवासियों के मनोरंजन का सर्व–प्रमुख साधन नृत्य व गायन है उसके पश्चात् यदि किसी साधन का नम्बर आता है तो वह है "मुर्गा लड़ाई"। मुर्गा लड़ाई कब से बस्तर के आदिवासियों में लोकप्रिय हुयी यह बतलाना कठिन है। वैसे अन्य ग्रन्थों में आज से ३००० वर्ष पूर्व एशिया में मुर्गा लड़ाई का वर्णन मिलता है। हमारे देश में तो चौसठ प्रमुख कलाओं में इसकी गिनती की जाती है, यह कहा जाता है कि आरंभ में दो व्यक्तियों के मध्य खूनी संघर्ष का आयोजन किया जाता था और दर्शक खूनी आनन्द उठाते थे, दांव लगाकर जुआ खेलते थे। कालांतर में व्यक्तियों की लड़ाई पर रोक लगा दी गयी तो विकल्प की तलाश हुयी। मुर्गों को आपस में लड़ते देख उन्हें ही विकल्प बनाया गया। आदिवासी समाज ने मुर्गा लड़ाई प्रारंभ की।

बस्तर के आदिवासियों में मुर्गा लड़ाई का बहुत आकर्षण है। समूचे बस्तर के बाजारों में यह लड़ाई होती है। जिस स्थल पर यह लड़ाई होती है उसे मुर्गा बाजार कहा जाता है यद्यपि वहां मुर्गा न बेचा जाता है न खरीदा जाता है। मुर्गा लड़ाई देखने का ऐसा शौक इन आदिवासियों में होता है कि और कुछ काम न होने पर भी आदिवासी दूर–सुदूर से अपना मुर्गा लेकर बाजार आते हैं और मुर्गा लड़ाकर चले जाते हैं कोई-कोई तो केवल अपने मुर्गे को लड़ाई दिखाने आते हैं।

अपनी खरीद फरोख्त पूरा करने के बाद बस्तर के आदिवासी बाजारों में निर्धारित स्थान पर एकत्र होने लगते हैं। सबसे पहले अपने मुर्गे का जोड़ तलाशते हैं। मुर्गों को आमने सामने छोड़कर उनकी बराबरी का अनुमान लगाते हैं। ऊँचाई, वजन, प्रशिक्षण ज्ञात कर झूठी लड़ाई करायी जाती है। यदि पाड़ याने बराबरी सिद्ध हो जाता है तो लड़ाई के लिए सहमति हो जाती है। इसी अवसर पर जीत–हार पर मालिकों में दांव की राशि तय हो जाती है।

चारो तरफ दर्शक, बीच में मुर्गे, मुर्गो के साथ मुर्गा लड़ाने वाले लोग मुर्गो को कूड़कूं–कूं से सारा वातावरण गूँजने लगता है। एक तरफ कतकार बैठे हुए हैं। उनके सामने कातियों का ढेर है, छोटा-बड़ा, मझोला सभी आकार-प्रकार के काती हैं। मुर्गे के दाहिनी टांग में अंगूठे के नाखून के ठीक नीचे तेज धार वाली छुरी एक विशेष ऊँचाई व कोण लेकर वह बांधता है, यह काती जहर-बुझी भी हो सकती है। लड़ाई के

बाद काती खोलकर कतकार को लौटा दी जाती है। विजय का श्रेय उसे भी होता है अतः उसे इनाम दिया जाता है। पराजित मुर्गा मालिक कुछ भी नहीं देता। गांवों में कतकार पराजित मुर्गे की एक टांग का अधिकारी होता है।

पैर में काती बंधा मुर्गा मैदान में लाया जाता है। लाल-लाल कलगी मुर्गे को शान होती है लेकिन इनको कलगी कटी हुयी है पूछने पर जानकार बतलाते हैं कि कलगी आक्रमण करते या प्रहार झेलते समय मुर्गे की आँख को ढंक सकती है इसलिए लोग कलगी को काट देते हैं। तभी मेरे ध्यान में यह बात आती है कि पहलवान लोग अक्सर गंजे क्यों होते हैं।

दोनों मुर्गे मैदान में आये कि पूरे दर्शक दांव लगाकर जैसे दो पक्षों में बंट जाते हैं। दांव पर लगायी गयी राशि कुछ पैसों से लेकर रुपयों तक हो सकती है। कहते हैं कि सन् १८३० ई० में एक जोड़ पर तो इंग्लैंड में ७५ हजार रुपयों की बाजी लगी थी। बेचारे अधनंगे, अधपेट आदिवासियों के पास इतना धन बाजी के लिए कहां। धन की इतनी बड़ी राशि तो उनकी कल्पना से भी बाहर की है।

बस्तर में मुर्गा लड़ाई के दो तरीके हैं। पहले तरीके में काती बंधा मुर्गा छोड़ने के पश्चात् फिर तब तक नहीं पकड़ा जाता जब तक हार-जीत का निर्णय नहीं हो जाता। इस प्रकार की लड़ाई का निर्णय एक या दो मिनट में हो जाता है, यह तरीका बारसूर, बीजापुर, दन्तेवाड़ा, कोन्टा, भानुप्रतापपुर इलाके में प्रचलित है। और यही मूल तरीका है।

दूसरा तरीका, पहले तरीके में संशोधन का फल है। इस पद्धति के अन्तर्गत दोनों मुर्गे एक-दूसरे पर रुक-रुक कर वार करते हैं। एक वार समाप्त होने पर दोनों मुर्गे पकड़ लिए जाते हैं। पुचकार कर उन्हें फिर दूसरे राउंड के लिए छोड़ा जाता है, इस प्रकार यह सिलसिला तब तक चलता रहता है जब तक एक मुर्गा लड़ने से मुँह न मोड़ ले, घायल होकर भाग न जाय। यह तरीका जगदलपुर और उसके आस-पास के इलाके में लोकप्रिय है। जब तक लड़ाई चलती रहती है दोनों पक्ष के लोग अपने-अपने मुर्गे के रंग का नाम ले-लेकर उसे उत्साहित करते रहते हैं।

लड़ाकू मुर्गा मैदान में योद्धा बनकर यों ही नहीं आ जाता, उसको

पूरी तरह प्रशिक्षित किया जाता है। उसे अनेक लड़ाइयों में दर्शक के रुप में साथ रखा जाता है। जिससे लड़ाई देखकर ये भी लड़ने के लिए भयानक चेष्टा करते हैं. इससे इनकी मांस पेशियां दृढ़ होती है। वह दांव-पेच देख सकता है और उसके मन की भीरुता क़म होती है। लड़ाकू मुर्गा लगभग ब्रह्मचारी होता है, मुर्गियों से उसे यथा संभव दूर रखा जाता है। ठंडे पानी से प्रतिदिन नहलाकर और वासी खाना खिलाकर उसकी सहनशक्ति बढ़ाई जाती है, इनसे पर्याप्त व्यायाम कराया जाता है, इनकी मालिश शराब से की जाती है ताकि उसकी त्वचा चिमड़ी हो जाए, उनका पंख कुछ छोटा किया जाता है. पीछे के पर काट दिए जाते हैं जिससे प्रतिद्वन्दी मुर्गा इन भागों को न पकड़ सके।

मैदान में मुर्गे उतरे, सतर्क सन्नद तनी हुयी गर्दन, सचेत आंखें, उठी हुयी पूंछ, प्रहार करने और झेलने के लिए दोनों चौकन्ने एक-दूसरे के गले या बगल के क़मज़ोर भाग पर काती मारने की कोशिश में ये पंख फड़फड़ाकर कूद कर गुत्थम-गुत्था हो जाते हैं। लहु-लुहान होने पर भी छोड़ने को तैयार नहीं। लड़ाई के मैदान में ही किसी एक को शहीद होना है।

मुर्गा युद्ध-क्षेत्र से भागा, घायल हुआ, मरा या आगे लड़ने में अरुचि दिखाई कि युद्ध का निर्णय हुआ। जीते हुए दर्शक दांव की राशि वसूलने में लग जाते हैं। पराजित मुर्गा विजयी मुर्गे के स्वामी को दे दिया जाता है। पराजित मुर्गे के स्वामी पर क्या बीतती है हमारी कल्पना से बाहर का है। दिन रात जिसे साथ लिए फिरता था, जिसके खाने-पीने की चिन्ता, अपने खाने-पीने से अधिक करता था जिसके स्वास्थ्य की चिन्ता उसे दिन-रात रहती थी वही प्यारा दुलारा आंखों का तारा मुर्गा मैदान में घायल, मुमुर्ष पड़ा है। वह न तो मुर्गे को देख सकता है और न मन-मारकर रह सकता है। भरे आंखों से वह युद्ध-क्षेत्र से दूर हो जाता है। कई अतिभावुक लोगों का ऐसे अवसरों पर गला फाड़कर रोते हुए देखा जा सकता है। ऐसा दृश्य रहता है मानो उसका कोई निकट सम्बधी पंचत्व को प्राप्त हो गया हो। घायल या युद्ध-क्षेत्र छोड़कर भागा मुर्गा विजेता मुर्गे के मालिक को सम्पत्ति होती है। विजयी मुर्गा भी चोट खाया रहता है मगर उसको प्राथमिक चिकित्सा की कोई व्यवस्था नहीं रहती। यों शहरी इलाकों में सायकल-ट्यूब के पचर सुधा-

रने के लिए प्रयुक्त साल्युशन या आयोडिन लगाकर कुछ प्राथमिक चिकित्सा कर दी जाती है। गाँवों में शहद, टमाटर, हरसिंगार की जड़ नमक के साथ घाव पर लगाते हैं, दाँव पर लगाई राशि विजयी मुर्गे के स्वामी को प्राप्त होती है। यह क्षण उसकी शान बढ़ाने का होता है। मानो वह स्वंय किसी युद्ध में विजेता हुआ हो – ऐसा मनोभाव लिए वह और उसके साथी चलते हैं।

मुर्ग़ा लड़ाना एक कला है। कब अपने मुर्गे को प्रहार करने के लिए छोड़ना चाहिए, कब उसे पकड़ना चाहिए, क़ैसे उसे प्रोत्साहन देना चाहिए, यह सब एक जानकार ही कर सकता है। लड़ते हुए मुर्गे को जल्दी से पकड़ना एक जोखिम भरा काम है क्योंकि उसकी पैर की काती कहीं भी लग़ सकती है। बैठकर यह मुर्ग़ा लड़ाई करायी जाती है। शहरों व ग्रामों में पेशेवर लड़ाने वाले होते हैं। वे निर्धारित शुल्क लेकर मुर्गा लड़ाते है। ऐसे लोगों की हथेलियों पर ताजे–पुराने घावों की कई पंक्तियां होती है जो मुर्ग़े के काती के चोट से लगे होते हैं।

ख़ूनी लड़ाई होने के कारण बस्तर की आदिवासी महिलाओं में यह अलोकप्रिय है। महिलायें मुर्गा लड़ाई नहीं देखती, मुरिया जनजाति में यह लड़ाई अधिक लोकप्रिय है। ख़ून और युद्ध को उत्तेजना का आनन्द वह इससे नहीं लेता वरन् मात्र जुए के दांव का आनन्द हो वह लेता है, जुए के दांव का आनन्द लेने ही गैर आदिवासी भी मुर्गा बाजार पहुँचते हैं, दांव लगाते हैं और आनन्द उठाते हैं।

आज का आदमी बहुत चालाक हो गया है। उसने स्वंय सामने आकर लड़ना भले ही बंद कर दिया है लेक़िन वह दूसरों को लड़ाने में सदैव आनन्द लेता आया है। पंचायत से पार्लियामेंट तक जब मैं आदमी को आदमी से लड़ते हुए नहीं लड़ाते हुए देखता हूँ तो लगता है, मेरे बस्तर का यह आदिवासी उतना जघन्य नहीं है वह अपने मुर्गे को ही लड़ाकर सुख ले लेता है। मुर्गा लड़ाई पर किसी प्रक़ार का प्रतिबन्ध लगाना समयोचित नहीं है।

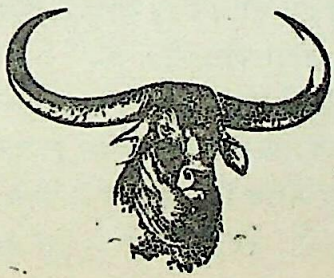

अध्याय—बारह

बस्तर का लमसेना

आदिम–संस्कृति को अपने हृदय में संजोये बस्तर शेष संसार के लिए अजूबों से भरा प्रतीत होता है। उन्ही अजूबों में से एक अजूबा है 'लमसेना'। लमसेना शब्द को लेकर भ्रमित होने की आवश्यकता नहीं है। सेना के नाम पर शिवसेना, नागसेना, आदि सेनाओं की श्रृखंला में इसे शामिल मत कीजिए। आंचलिकता और प्रादेशिकता-वाद ने तो इस देश में तीन सौ से अधिक ऐसी सेनाएं बनवा दी थी आपको यदि यह 'लमसेना' भी इसी जोड़ का शब्द लगे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

आदिवासियों की अनेक विवाह संस्थाओं में से एक है यह लमसेना पद्धति। लमसेना बस्तर के आदिवासियों के वैवाहिक जीवन से सम्बंधित एक सामाजिक संस्था है, जिसका आधार पूरी तरह से आर्थिक है। भारत के अन्य आदिवासी क्षेत्रों की तरह बस्तर में ही यह प्रथा विद्य–मान है। 'लंबसेवन' शब्द कों सामने रखकर लमसेना की अर्थवत्ता तक पहुँचा जा सकता है। प्रमाण तो नहीं दे सकता लेकिन मुझे इस शब्द की व्युत्पत्ति भी 'लंबसेवन' से ही लगती है। लम्बे काल तक टहल सेवा और खिदमतगारी करने की प्रक्रिया ही कालांतर में संज्ञावत् हो गई लगती है। लमसेना रखने को यह आदिवासी–प्रथा अब तो बस्तर के गैर आदिवासियों में भी अपनाई जाने लगी है। बस्तर में रह रहे रावत, सुन्डी, पनका, महार, कुम्हार आदि अन्य जातियों के द्वारा भी यह अपना ली गई है।

'लमसेना' कहते ही हमारे आंखों के सामने एक हृष्ट–पुष्ट तरु–णाई के द्वार खटखटाने को आतुर आदिवासी किशोर का चित्र झूल जाता है। अशिक्षित या अध-शिक्षित हो सकता है यह लमसेना आर्थिक दृष्टि से सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है यह। सबसे विचित्र स्थिति यह है कि माँ–बाप घर द्वार के रहते हुए भी उस अभागे किशोर को दूसरों के घर रहने-बसने को विवश होना पड़ता है।

लमसेना पला–बढ़ा अपने घर में मगर चाकरी करने दूसरे के घर में निकला किशोर है। साध्य, साधक और साधन का एक अनूठा त्रिकोण है – लमसेना,। लमसेना का साध्य निश्चित रुप से पत्नी की प्राप्ति होती है, इसके लिए भावी पत्नी के घर वालों को (माँ-बाप, भाई-बहन)

कठिन सेवा उसे करनी पड़ती है। साधक बेचारा लमसेना खुद होता है। अनवरत साधना के पश्चात् उसे साध्य (पत्नी) की प्राप्ति होती है। बहुत कम क्षेत्र के लोगों को पत्नी प्राप्ति के लिए ऐसी कठोर साधना करनी पड़ती है। बस्तर का लमसेना इसी प्रकार के लोगों में से है।

बस्तर की प्राय: सभी आदिम जातियों में विवाह से पूर्व वर पक्ष से 'वधू की कीमत' लेने की प्रथा है। छत्तीसगढ़ की कतिपय अन्य जातियों में भी वधू के लिए गहने व वस्त्र के रुप में सामग्री या राशि प्राप्त करने की प्रथा है। बस्तर में यह 'वधू की कीमत', जिसे सामान्यत: 'खरचा' कहा जाता है। वर पक्ष से प्राप्त किया जाता है, यह कुछ रुपयों के अतिरिक्त अन्न और वस्त्र के रुप में होती है। जो सम्पन्न, खाता-पिता घर का होता है, उसके लिए तो यह कोई समस्या नहीं होती बड़ी आसानी से वे यह 'खरचा' दे देते हैं, मगर जो अत्यंत गरीब है ऐसे आदिवासी परिवार के लिए, इस राशि को इस सामग्री को जुटा पाना टेढ़ी खीर होती है। ऐसे माँ-बाप अपने पुत्र को, अपने आंखों के तारे को अपने राज दुलारे को अपने भावी ससुराल में ३—५ या ७ वर्षों तक सेवा के लिए भेज देते हैं। यह समय दोनों पक्ष मिलकर निर्धारित करते हैं। वर-वधू की उम्र और खरचे' की राशि इस काल-निर्धारण का आधार होता है इस काल में उसके द्वारा किया गया श्रम का मूल्यांकन रुपयों के आधार पर किया जाता है। बस्तर के आदिवासियों में कांकेर से कोंटा तक यह लमसेना पद्धति जीवित है। बस्तर के मुरिया, माड़िया, भतरा, परजा, हलबा प्राय: सभी जन-जातियों में यह प्रथा विद्यमान है पढ़ें-लिखे व शहरों के सम्पर्क में आए आदिवासी परिवार भी इस प्रथा को अपनाए हुए हैं इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इस प्रथा की जड़ें कितनी गहरी व व्यापक क्षेत्र में फैली हुयी है।

तीन-पांच या सात वर्षों का यह सेवाकाल लमसेना के लिए अग्नि-परीक्षा की घड़ी होती है। आजकल की चाकरी की भाषा में हम इसे लमसेना का 'प्रोवेशनरी प्रियेड' भी कह सकते हैं। इस मध्य यह अवलोकन किया जाता है कि किशोर क्या कर सकता है ? कितना श्रम उसकी बाहुओं से हो सकता है, कितनी सहनशीलता उसमें है बड़ों के प्रति उसका व्यवहार कैसा है भावी पत्नी का निर्वाह उसके साथ किस ढंग से हो पावेगा— इन सब बातों का सूक्ष्म अवलोकन किया जाता है।

भावी ससुराल के लोग ही नहीं वरन् उस समाज के सभी लोग इस अवलोकन में शामिल रहते हैं। परीक्षा की ये घड़ियां लमसेना के लिए बहुत अधिक महत्व की होती है। कसौटी पर कसा लमसेना के लिए बहुत अधिक महत्व की होती है। कसौटी पर कसा लमसेना जब खरा उतरता है, तब उसका प्रोबेशन पीरियड खतम होता है।

आयतू, हिड़मा, बोदा, भुरसू चाहे कुछ भी नाम उस बालक का क्यों न हो, भावी ससुराल में लंबसेवन के काल में वह सिर्फ लमसेना रह जाता है। इसी नाम से पुकारा जाता है परिचय कराया जाता है, 'अमुक के लिए यह लमसेना है' – इस रुप में उसका परिचय उसकी भावी पत्नी के नाम को लेकर करावाया जाता है। लमसेना की आवाज ग्रह–परिसर में गूंजो और लमसेना हाजिर, आदेश दीजिए आदेश बजा लावेगा।

लड़की जानती है समझती है कि यह मेरे लिए खट रहा है। प्रारंभ में उसका व्यवहार रुखा-रुखा रहता है उसकी सहेलियां उससे ठिठोली करती रहती हैं, मगर लमसेना अपनी सेवा–सुश्रुसा से जहाँ सास–ससुर व अन्य लोगों को प्रसन्न करता है, वहीं भावी पत्नी का मन भी जीत लेता है। थोड़े–बहुत अंतराल के साथ दोनों वयः संधि की अवस्था से गुजरता हैं। किशोर अवस्था समाप्त होती है, यौवन का आगमन होता है। दोनों एक-दूसरे को देखते हुए यौवन की देहली पर कदम रखते हैं। एक मूछों का भीगना देखती है तो दूसरा कनखियों से वक्ष के उभार को लक्ष्य करता है। भीतर–भीतर रागात्मकता का स्त्रोत अन्तः सलिला की भांती फूटता है। ऊपर–ऊपर की रुक्षता के बीच मन की गहरी परतों में आत्मीयता प्रसार पाने लगती है। ठीक दूब की तरह जो ऊपर की तुलना में धरती के अंदर अपनी जड़े अधिक जमाती है।

विधि की विडम्बना देखिए कि जब लमसेना की अन्य समवयस्क युवक उन्मुक्त रुप से जीवन का आनन्द ले रहे होते हैं तब वह मन मारकर खट रहा होता है। घोटुल का आकर्षण वातावरण मुरिया युवकों को हर्षाने वाला होता है मगर मुरिया लमसेना को घोटुल भी टीसता है, वह लमसेना है न घोटुल में उसका प्रवेश वर्जित नहीं होता, वह वहां जा सकता है, मगर अपनी भावी पत्नी से वहाँ भी उसे दूर ही रहना

पड़ता है। वह लमसेना है, वह घोटुल में मोटियारी से मिल सकता है, बात कर सकता है, मगर यहां भी अपने लमसेना होने की बात को भूल नहीं सकता। वह मानों वहां भी इस बीच केवल एक मशीन है— भाव शून्य, अपने स्वामी के आदेश पर चलना व रुकना ही उसकी नियति है।

नदी के किनारे पर स्थित फिर भी प्यासा का प्यासा। लमसेना यह सोचकर मन को धीरज बंधाता रहता है कि नदी तो मेरी ही है, प्यास आज नहीं तो कल बुझेगी ही। लमसेना का प्रोवेशनरी प्रियेड जब बीतता है, अपने भावी ससुराल में तीन, पाँच, सात वर्ष का निर्धारित काल व्यतीत कर, पत्नी प्राप्त कर जब वह अपने घर लौटता है तो उसके गरीब माँ बाप के लिए हर्ष का अवसर होता है। लमसेना का बाप अपनी हैसियत के अनुसार अपने सम्बंधियों को पार्टी देकर अपनी खुशी का इज़हार करता है, उसका पुत्र परीक्षा में सफल होकर लौटा होता है। पुत्र को सफलता, पिता के लिए गौरव की बात तो होती ही है।

सामान्यतः लमसेना अपनी साधना में सफल होकर साध्य की प्राप्ति कर ही लेता है मगर कभी-कभी (१%) जब लमसेना देखता है कि उसकी नदी छिनी जा रही है तब वह व्याकुल हो उठता है। एक लमसेना के लिए व्यक्तिगत और पारिवारिक रुप से सबसे खराब स्थिति तब आती है जब कोई दूसरा व्यक्ति पैसे के बल पर या अन्य प्रभाव से उसे हटाने की कोशिश करता है लमसेना से कहा जाता है – 'रास्ता नापो' ऐसे में दर्द भरे मन की निरीहता कितनी मर्मान्तक होती होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है। टूटे हुए सपने, उजड़ा हुआ मेला और इन सबके बीच अकेलेपन की पीड़ा से विदग्ध लमसना बड़ा करुण लगता है। हाय रे अर्थ ! हाय रे अर्थ के अनर्थ ! कई सवाल एक साथ उसको मथ रहे हैं -- मेरा क्या कसूर कि मेरी मंगेतर को कोई दूसरा ले उड़ा ? क्या फिर से लमसेना बनूं ? बनूं भी तो क्या गारंटी है कि इस बार भी वही कुछ नहीं होगा – लोग कहते हैं कि इतिहास अपने को दुहराता है और फिर पल, घंटे, मास के सहारे जीवन के जो सुनहरे वर्ष बीत गए हैं, उनका क्या होगा ? समय वापस लौटता है क्या ? उम्र कभी वापस नहीं आती।

ऐसे मर्मान्तक क्षणों में लमसेना और उसके परिवार की स्थिति और दयनीय हो जाती है। सामाजिक व्यवस्था, आस्था, सस्था ने लम-

सेना का सृजन किया है, न्याय की सर्वाधिक आशा उसी समाज से की जा सकती है। समाज की बैठक बुलायी जाती है। पूरे मामले पर गौर किया जाता है, मगर समाज के बड़े-बूढ़े यह जानते हैं, मानते हैं कि वधू को उसकी सहमति के बिना वर को सौंपा नहीं जा सकता। लड़की यदि लमसेना से मुँह मोड़ लेती है तो समाज भी मौन रह जाता है। लड़की के माँ-बाप ही उसकी पकड़ में आते हैं। उन्हें ही नियमानुसार लमसेना के कार्य-दिवसों का प्रतिदान मुद्रा में करना पड़ता है, यह प्राप्त-राशि लमसेना के घाव पर क्या मल्हम लगाएगी। प्रतिदान के रुप में प्राप्त कुछ रुपए, लमसेना का अधेड़ उम्र का साधनहीन बाप प्राप्त करता है, उसे कुछ संतोष भले ही होता हो लेकिन लमसेना क्या पाकर संतोष करे— कड़वे घूँट ही हैं, उसके पास पीने के लिए।

लमसेना कौन बाप भेजता है यह तो ज्ञात कर लिया। अब थोड़ी चर्चा लमसेना कौन रखता है ? पर आवश्यक है प्रायः ऐसा परिवार जिसके पास संतान के नाम पर एक ही कन्या रहती हैं और जो चाहता है कि उसका भावी दामाद लड़की के लिए उपयुक्त हो इसलिए भावी दामाद को लमसेना के रुप में रखकर वह उसका मूल्यांकन करता हैं। कसौटी पर खरा उतरने पर कन्या का हाथ लमसेना को थमा देता है। अब लमसेना 'घर जमाई' हो जाता है। यदि इस प्रोवेशनरी प्रियेड में लमसेना निकम्मा, कामचोर पाया गया तो उसे उसके श्रम का मुआवजा रुपयों में कर दफा कर दिया है। लमसेना की सामाजिक प्रतिष्ठा कुछ भी नहीं होती, परिवार में वह दोयम दर्जे का सदस्य होता है। 'घर जमाई' की स्थिति का एक वर्णन कवि बिहारी लाल ने किया है —

आवत जात न जानियत तेजहिं तजि सियरान
घरंह जवांई लौं घट्यो, खरो पूस दिनमान।

'घर जवांई की जिस महत्वहीन स्थिति का वर्णन कवि ने किया है उससे कहीं अधिक बद्तर स्थिति बस्तर के लमसेना की रहती हैं।

प्रसिद्ध नृतत्व शास्त्री स्वर्गीय वेरियर एल्विन ने बस्तर की घोटुल संस्था पर एक प्रसिद्ध पुस्तक 'मुरिया एंड देयर घोटुल' लिखकर बस्तर के मुरिया लोगों की घोटुल संस्था को शेष संसार के सामने लाया है। एल्विन को बस्तर के घोटुल की रंगीनी बहुत भाई, लेकिन अस्तित्व को घुलाकर खटने वाले लमसेना का दर्द उन्होंने अनदेखा ही कर दिया ?

अध्याय—तेरह

बस्तर में शिक्षा का इतिहास

बस्तर पर रुचि रखने वालों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि यहाँ शिक्षा का इतिहास उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से प्रारंभ होता है। बस्तर के पिछड़ेपन की चर्चा करते समय हमें इस तथ्य को विस्मृत नहीं करना चाहिए। १८८७ ई० तक भारत में चार विश्वविद्यालय स्थापित हो चुके थे। बम्बई, मद्रास, कलकत्ता व इलाहाबाद के छात्र जिन दिनों विश्वविद्यालयोन शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, बस्तर का छात्र प्राथमिक शिक्षा से भी वंचित था। वर्तमान बस्तर जिला पूर्ववर्ती कांकेर और बस्तर रियासत को मिलाकर गठित किया गया है। आज भी शिक्षा की दृष्टि से यह अंचल काफी पिछड़ा है। यूँ तो पूरे भारत में जहाँ-जहाँ देशी रियासते थी वहाँ के शासकों ने शिक्षा की उपेक्षा की मगर बस्तर में यह उपेक्षा सीमा पार कर चुकी थी। क्षेत्रफल की दृष्टि से अग्रगण्य बस्तर जनसंख्या की दृष्टि से नगण्य था। शिक्षा की दृष्टि से स्थिति और भी खराब थी। भारत के लिए अंग्रेजी राज्य कुछ मामलों में वरदान था। इन वरदानों में से एक पाश्चात्य शिक्षा थी। जहाँ तक बस्तर का सवाल है, अंग्रेजी हस्तक्षेप ने ही यहाँ शिक्षा की ज्योति जलवाई।

बस्तर में काकतीय शासन का प्रारंभ चौदहवीं शताब्दी में हुआ। बस्तर के राजाओं की मन: स्थिति शेष भारत के राजाओं की मन स्थिति से भिन्न नहीं थी। जन शिक्षा की व्यवस्था वे अपना दायित्व नहीं समझते थे। बस्तर की भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि वह वाह्य संसार से लगभग कटा हुआ था। जन शिक्षा तो था ही नहीं राजाओं की, राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा की कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी। बस्तर व कांकेर रियासत के कुछ भागो से गुजरने वाला पहला अंग्रेज जे० टी० ब्लन्ट था। १७९५ ई० मे वह यहाँ के कुछ भागों से गुजरा था। अपनी यात्रा वृतांत में उसने इन रियासतों की स्थिति का थोड़ा सा वर्णन किया है। कांकेर रियासत के बारे में उसने लिखा है कि पूरे रियासत में पढ़ने, लिखने में समर्थ केवल दीवान थे (अर्ली यूरोपियन ट्रैव्हलर्स इन द नागपुर टेरिटरिज़ पृ० १३५) कांकेर रियासत में जो शैक्षणिक अंधकार था, वही बस्तर में भी था।

बस्तर—महत्वपूर्ण तिथियाँ

२६१ ई० पू० ⊕ कलिंग-युद्ध में सम्राट अशोक से युद्ध

३५० ई० ⊕ समुद्रगुप्त द्वारा महाकान्तार विजय

४७० ई० ⊕ नलवंश के शासन का प्रारंभ

८५० ई० ⊕ गंगवंश के शासन का प्रारंभ

१०२३ ई० ⊕ नागवंशी शासन का प्रारंभ

१०६५ ई० ⊕ राजपुर ताम्रपत्र, राजा मधुरांतक देव द्वारा नरबलि के लिए ग्राम देने का उल्लेख।

११११ ई० ⊕ जाजल्लदेव से युद्ध करने वाले सोमेश्वर प्रथम की मृत्यु

१ ३३ ई० ⊕ बस्तर में काकतीय शासन का प्रारंभ।

१७७२ ई० ⊕ राजा दलपतदेव द्वारा जगदलपुर को राजधानी बनाना।

१७७८ ई० ⊕ जयपुर राजा को कोटपाड़ परगना सौंपा गया।

१७८० ई० ⊕ मराठा पराश्रितता का प्रारंभ

१८०७–८ ई० ⊕ मराठों का बस्तर आक्रमण

३० मार्च १८१९ ई० ⊕ बस्तर व भोंसले राजा के मध्य इकरार-नामा

१८५४-५५ ई० ⊕ अंग्रेजी सर्वोच्यता में बस्तर आया।

२९ सित. १८६२ ई० ⊕ सी० ग्लासफर्ड द्वारा बस्तर रियासत संबंधी रिपोर्ट

११ मार्च १८६२ ई० ⊕ लार्ड केनिंग द्वारा भैरमदेव को एडाप्सन सनद प्रदान

१८६८ ई० ⊕ वस्तर का वार्षिक ट्रिब्युट ३०५४ रु० निर्धारित

११ दिस० १८७० ई० ⊕ भैरमदेव द्वारा एकनालेजमेंट आफ फियल्टी प्रस्तुत

१ मार्च १८७६ ई० ⊕ बेगार कर रहे कुलियों द्वारा राजा भैरमदेव का सामान फेंक दिया जाना। दीवान की गोलीबारी से ४ हताहत

२ मार्च १८७६ ई० ⊕ राजधानी जगदलपुर का घेरा प्रारंभ

५ अप्रेल १८७६ ई० ⊕ मैकजार्ज के नेतृत्व में सहायता टुकड़ी का जगदलपुर पहुँचना

१४ जून १८७६ ई० ⊕ वस्तर विप्लव को दवाने का खर्च ११,१५१ रु० बस्तर से वसूलने का आदेश

१८८६ ई० ⊕ बस्तर में प्राथमिक शिक्षा का प्रारंभ

२९ जुलाई १८९१ई० ⊕ भैरमदेव की मृत्यु

१८९२ ई० ⊕ वस्तर से वार्षिक ट्रिब्युट १७,००० निर्धारित

२ फर. १९१० ई० ⊕ १९१० के विप्लव का प्रारंभ

७ फर. ,, ,, ⊕ राजा द्वारा उच्चाधिकारियों को तार भेजा जाना

१६ ,, ,, ,, ⊕ खड़गघाट में अंग्रेजों द्वारा गोली चालान से ५ मृत

९ मार्च ,, ,, ⊕ छोटे डोंगर में गोली चालान से १२ विप्लवी मृत

२७ ,, ,, ,, ⊕ अलनार में गोली चालान से २१ विप्लवी मृत

१ अप्रेल १९३३ ई० ⊕ वस्तर राजा की उपाधि 'महाराजा' की गई

२८ फर. १९३५ ,, ⊕ प्रफुल्ल कुमारी देवी का लंदन में निधन

१ जन. १९४८ ,, ⊕ वस्तर भारत संघ में सम्मिलित

१७८० ई० से पहले बस्तर के काकतीय शासक बाह्य हस्तक्षेप से मुक्त स्वतंत्र शासक थे। इस तिथि के पश्चात् से मराठा पराश्रितता का प्रारंभ हुआ जो १८५४ ई० के प्रारंभ तक चला। बाह्य संसार के सम्पर्क में आने का असर बस्तर पर पड़ा। सन् १८५४ ई० में भोंसले के पतन के पश्चात् भोंसला साम्राज्य अंग्रेजी साम्राज्य में शामिल कर लिया गया। बस्तर भोसलों का अधीनस्थ था। अब यह अंग्रेजों का अधीनस्थ हुआ। लेफ्टि० कर्नल इलियट ने बस्तर का दौरा कर अपनी रिपोर्ट उच्च अधिकारियों को प्रेषित की। रिपोर्ट पर कुछ कार्यवाही होती इससे पहले १८५७–५८ का महाविद्रोह प्रारंभ हो गया और पूरा ध्यान इसे दबाने में लग गया। शांति स्थापित होने पर अंग्रेजों ने बस्तर के बारे में पूर्ण रिपोर्ट देने के लिए सन् १८६२ ई० में अपर गोदावरी डिस्ट्रिक्ट के डिप्टी-कमिश्नर सी० ग्लासफर्ड को निर्देश दिया। ग्लासफर्ड ने अपनी रिपोर्ट तैयार की। बस्तर के मामले में यह रिपोर्ट ऐतिहासिक महत्व रखता है। सभी पहलुओं पर इस रिपोर्ट में विचार किया गया है। बस्तर में शिक्षा की स्थिति के बारे में १४० वें पैराग्राफ में उन्होंने लिखा है – पूरे बस्तर में नाम के लिए भी स्कूल नहीं है। चारों ओर अज्ञानता का साम्राज्य है। दीवान का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने पर भी उन्होंने कोई उत्सुकता नहीं दिखायी। ज्ञान के विस्तार से होने वाले लाभों को समझने में दीवान असमर्थ रहे।

१८६२ ई० में एक भी स्कूल बस्तर में नहीं था। राजा और दीवान स्कूल की आवश्यकता समझ पाने में असमर्थ थे, समय के साथ साथ अंग्रेजों की पकड़ बस्तर पर मजबूत होती गई। अंग्रेज अधिकारी लगातार बस्तर आने लगे। स्कूल स्थापित किए जायें यह सिफारिश उन्होंने बारम्बार की। स्कूलों के बारे में कुछ किया जाता इससे पूर्व सन् १८७६ ई० में बस्तर अशांत हो गया। अपने कतिपय मांगों को लेकर आदिवासी प्रशासन से टकराने की मुद्रा में आए। विस्फोटक स्थिति, बुद्धिमत्तापूर्ण उठाए गए कदम से टली।

राजा भैरमदेव का शासन काल बस्तर में शिक्षा के इतिहास में विशेष महत्व रखता हैं। उन्हीं के शासन काल में सन् १८८६ ई० में बस्तर में तीन स्कूल खुले। ये तीनों स्कूल राजधानी जगदलपुर में खोले गए। बस्तर के काकतीय शासकों को साधुवाद देना चाहिए।

स्कूल खोलने के अवसर पर उन्होंने किसी के साथ पक्षपात नहीं किया। मुसलमानों की शिक्षा के लिए अरबी माध्यम के स्कूल खोले गए। उड़ीसा से आ बसे लोगों के पालितों के लिए उड़िया माध्यम का एक स्कूल खोला गया। एक स्कूल हिन्दी माध्यम वाला भी खोला गया। हिन्दी स्कूल में एक साथ तीन कक्षायें प्रारंभ की गई। इन स्कूलों में कुल मिलाकर ८० छात्र अध्ययन कर रहे थे। दीवान श्री कृष्णा राव को इस बात का श्रेय जाता है कि उन्होंने स्कूल खोले। दीवान इन तीन स्कूलों से संतुष्ट नहीं हुए। स्कूलों की आवश्यकता किन स्थानों में है इसका पता लगाने के लिए उन्होंने रियासत का दौरा किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ६ नए स्कूल और खोले जा सकते हैं (मेमो ऑन द.एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द बस्तर स्टेट १८८६–८७ वर्ष)

प्रारंभ से ही शिक्षा का माध्यम क्या हो ? इस पर मतभेद था। दीवान क्षेत्रीय भाषा को माध्यम बनाना चाहते थे। मुरियों की भाषा में पुस्तक प्रकाशित कराने की उन्होंने योजना बनाई थी। १८८८–८९ ई० में पाँच तहसील मुख्यालयों में एक–एक स्कूल खोले गए। भेजो, डोंगर, दन्तेवाड़ा, नारायणपुर, अन्तागढ़ में ये स्कूल खुले। १८८९ से १८९५ ई० के मध्य स्कूलों की संख्या बढ़कर २७ हो गई। १८९६ ई० का वर्ष शिक्षा के प्रसार के दृष्टिकोण से उल्लेखनीय है। इस वर्ष पन्द्रह नए स्कूल खोले गए जो एक रिकार्ड था। स्कूलों की संख्या बढ़कर ४१ हो गई जिनमें पढ़ने वालों की संख्या २,२५२ तक पहुँच गई (एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ बस्तर फार द इयर १८९६) इस बीच एक मिडिल स्कूल भी खुल चुका था। १८९७ ई० में ग्यारह और स्कूल खुलने पर कुल स्कूलों की संख्या ५८ हो गई। विद्यार्थियों की संख्या बढ़कर २६२७ हो गई। इन स्कूलों के लिए भवन उपलब्ध कराना एक समस्या थी। बस्तर प्रशासन धीरे–धीरे स्कूलों को भवन उपलब्ध कराने लगी। १८९८ ई० के प्रशासनिक रिपोर्ट में उल्लेख मिलता है कि उस वर्ष ग्यारह स्कूलों के लिए भवन उपलब्ध कराये गए।

बस्तर में शिक्षा के प्रचार-प्रसार में जमींदारों का योगदान उल्लेखनीय है। बारसूर, धनपूंजी और भैरमगढ़ के जमींदारों (मालगुजारों) ने अपने मुख्यालयों के स्कूल का पूरा खर्च वहन किया। कुछ मालगुजारों ने योग्य व निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था की।

बस्तर में स्कूलों और छात्रों की संख्या में लगातार वृद्धि होती गई। ये स्कूल जन माँग पर नहीं वरन् प्रशासन की मर्जी पर खोले जाते थे। स्कूलों में छात्रों की उपस्थिति नियमित रहे यह एक समस्या थी। छात्रों को स्कूल लाने के लिए कुछ स्कूलों में सहायक नियुक्त किए गए। यह सहायक 'मानिटर' कहलाता था। बस्तर में सहायक शिक्षा अधिकारी के पद पर कार्य करने वाले शिवराम दास ने भेंट के दौरान बताया कि स्कूल से सम्बंधित अनेक समस्याएँ सामने थी – "आदिवासी बालक जब लंगोटी लगाकर स्कूल जाता था तब मास्टर जी उसे पूरे कपड़े पहनकर आने के लिए कहते थे। बालक के लम्बे–लम्बे बाल कटवाने के आदेश दिए जाते थे। मुरिया इलाकों में स्थिति और खराब थी। जो मुरिया बालक स्कूल में प्रवेश लेता था उसके लिए घोटुल के द्वार स्वयमेव बन्द हो जाते थे। मुरिया जन-जाति के लोगों के लिए घोटुल प्राणों से अधिक प्रिय होता है। उसके जीवन की अनिवार्य आवश्यकता घोटुल संस्था थी जिसे वह छोड़ नहीं सकता था"। बच्चों को कूल भेजना बस्तर आदिवासी नहीं चाहता था। आदिवासी बच्चा परिवार का कमाऊ सदस्य होता है। बच्चे का स्कूल चला जाना यानि की काम करने वाले दो हाथों की कमी हो जाना है। बिना कमाए भोजन जुट पाना सम्भव नही होता ऐसी स्थिति में आदिवासी परिवार के लिए यह महति क्षति थी। बच्चे को स्कूल का वातावरण भी रुचिप्रद नहीं लगता था अतः वह स्कूल से भागना चाहता था।

स्कूलों के साथ ही साथ शिक्षकों की समस्या मुँह बाये खड़ी थी। रियासत में पढ़े –लिखे लोग नहीं थे अतः रियासत से बाहर से शिक्षक नियुक्त किए जाते थे। ये शिक्षक बस्तर के अंदरुनी भागों में सेवा देने को तत्पर नहीं थे। शिक्षकों को प्रशिक्षण देना भी समस्या थी। जहाँ शिक्षक ही नहीं मिलते हों वहाँ प्रशिक्षित शिक्षक का प्रश्न ही नहीं उठता था।

सन् १९१० ई० में हुए व्यापक संघर्ष ने बस्तर में शिक्षा के विकास को काफी अवरुद्ध किया। १९१० ई० के प्रारंभ में रियासत में कुल स्कूल ६० थे। १९१० ई० के संघर्ष ने ४५ स्कूलों को फूँक डाला (एन्वल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ बस्तर फॉर द इयर १९१०) छात्र-छात्राओं की जो संख्या १९०९ में ५५८६ थी वह घटकर ११०९ रह गई। सन्

१९१० ई० के व्यापक संघर्ष ने वस्तर रियासत को अपनी शिक्षा नीति में आमूल चूल परिवर्तन के लिए वाध्य किया। सन् १९१० ई० में स्कूलों का क़ाफी संख्या में जलाया जाना आदिवासी मनः स्थिति को सामने लाने वाला था। वस्तर का आदिवासी थोपी गई कोई भी वस्तु सहन नहीं करता! ये स्कूल भी चूँकि उस पर जवरन थोप दिए गए थे, अतः उन्होंने स्कूलों को ज़लाकर, नष्ट कर अपना तीव्र आक्रोश व्यक्त किया। संघर्ष के दौरान स्कूल तो नष्ट किए गए ही, बेचारे स्कूल मास्टर और उनके सहायक मानिटर भी आदिवासियों के हाथों पीटे, उनकी सम्पत्ति को भी नुकसान पहुंचाया गया।

सन् १९१० ई० के व्यापक संघर्ष ने प्रशासन को फूँक-फूँक कर कदम रखने के लिए वाध्य किया। दूध का जला छांछ को भी फूँक कर पीता है। नए स्कूल का खोलना एक गंभीर विषय समझा जाने लगा। पर्याप्त जाँच पड़ताल के पश्चात् ही इस ओर कदम उठाया जाने लगा। इसका सर्वोत्तम प्रमाण यह है कि सन् १९१० से १९२१ के मध्य पूरे रियासत में केवल दो नए स्कूल खोले गए। प्रशासन का फूँक-फूँक कर कदम रखना बुद्धिमत्तापूर्ण था।

वस्तर रियासत में प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल तो खुल गए थे, मगर काफी दिनों से एक हाई स्कूल की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। इस आवश्यकता की पूर्ति सन् १९२८ ई० में होती हैं। रियासत में एडमिनिस्ट्रेटर के पद पर डब्ल्यू० ग्रिग्सन प्रतिष्ठित थे। उन्होंने इस दिशा में कार्यवाही की। रियासत की राजधानी जगदलपुर में हाईस्कूल खोला गया। प्रशासक के नाम पर स्कूल का नामक़रण ग्रिग्सन हाईस्कूल रखा गया। उल्लेखनीय है कि रियासत वस्तर का यह प्रथम और अंतिम हाईस्कूल था।

पालक और पालित शिक्षा की ओर आकृष्ट हो इसके लिए कुछ छात्रवृत्तियों की व्यवस्था रियासत की ओर से की गई। स्त्री-शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया गया। उन्हें शिक्षा प्राप्ति हेतु प्रेरित करने के उद्देश्य से सन् १९३४ ई० में चार छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गई। प्रतिमाह दो-दो रुपये छात्रवृत्ति के रुप में देने की व्यवस्था की गई। कुछ प्रतिभाशाली छात्रों को भी शिक्षण-शुल्क से मुक्त किया गया। रियासत के जमींदारों ने भी छात्रों को शिक्षा प्राप्ति की ओर आकृष्ट करने के उद्देश्य

से छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की । इस संदर्भ में भोपाल पटनम के जमींदार उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने जमींदारी के पाँच योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति देना प्रारंभ किया । यह एक अनुकरणीय उदाहरण था ।

स्कूलों का खोला जाना जन–मांग पर आधारित होने लगा । खोले गए स्कूल यदि अलोकप्रिय सिद्ध होते तो अविलम्ब उन्हें वन्द कर दिया जाता । ग्राम उसूर का स्कूल इसी कारण वन्द किया गया । १९३६ का वर्ष बस्तर में मुस्लिम शिक्षा के इतिहास में उल्लेखनीय है। इस वर्ष पच्चीस मुस्लिम छात्राओं ने अंजुमन स्कूल में प्रवेश लेकर मुस्लिम महिला शिक्षा का प्रारंभ किया ।

हाई स्कूल में विज्ञान की पढ़ाई एक अनिवार्य आवश्यकता थी । विज्ञान की पढ़ाई का प्रारंभ सन् १९३६ ई० से प्रारंभ होता है । हाई स्कूल पास विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहता था मगर रियासत में इसकी व्यवस्था नहीं थी । रियासत जितना कर सकता था उतना उसने किया । योग्यता के आधार पर छात्रवृत्ति देकर प्रतिभाशाली छात्रों को रियासत से वाहर उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु भेजा जाने लगा । सन् १९४२ ई० में वस्तर रियासत के वजट में शिक्षा मद पर पैंतालिस हजार रु० खर्च हुए ।

वस्तर में शिक्षा का विकास अनवरत प्रयास का सुफल है । इस महान यज्ञ में सम्मिलित सभी व्यक्ति साधुवाद के पात्र हैं । सन् १९८५ ई० में वस्तर में प्राथमिक शिक्षा अपना शताब्दी पूरा कर रहा है । प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझते भूतपूर्व व वर्तमान शिक्षकों को हमें विस्मृत नहीं करना है ।

सन् १९४५ ई० में रियासतों के विलिनीकरण के दौर में बस्तर भी भारत संघ में सम्मिलित हुआ । उस समय रियासत में स्कूलों की कुल संख्या ५४ थी । ध्यातव्य है कि सन् १९१० ई० के प्रारंभ में वस्तर में ६० स्कूल थे ।

निर्मला बेहार

जन्म स्थल — कसडोल, जिला-रायपुर

जन्म तिथि— १५-११-१९५४

शिक्षा — एम० ए० इतिहास

प्रकाशन — 'बस्तर आरण्यक'

पहली प्रकाशित पुस्तक

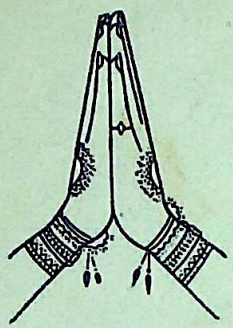

"वस्तर के इतिहास और संस्कृति के कई पहलूओं को उजागर करने वाली, इस पुस्तक के सम्बन्ध में आपकी सम्मति आमंत्रित हैं"

— लेखक द्वय

प्रमुख वितरक— जीत स्टेशनरी स्टोर्स, जगदलपुर;

मुद्रक— जया प्रिंटिंग प्रेस, जगदलपुर